नई दिल्ली के
शाही महल

सुमंत भौमिक

यह बेस्ट सेलर अंग्रेज़ी पुस्तक
प्रिंसली पैलेसेस इन न्यू दिल्ली
का हिंदी अनुवाद है।

An imprint of Niyogi Books

प्रकाशक

नियोगी बुक्स

ब्लॉक-डी, बिल्डिंग नं. 77
ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेज़-1
नई दिल्ली-110020, भारत
दूरभाष: 91-11-26816301, 26818960
ईमेल: niyogibooks@gmail.com
www.niyogibooksindia.com

मूलग्रंथ ©: सुमंत भौमिक
अनुवाद ©: नियोगी बुक्स
चित्र सौजन्य ©: उल्लिखित छायाचित्रों के अतिरिक्त अन्य सभी चित्र– सुमंत भौमिक

संपादक: वंदना गुप्ता
डिज़ाइन: शशि भूषण प्रसाद

ISBN: 978-93-91125-51-6
प्रकाशन वर्ष: 2022

सर्वाधिकार सुरक्षित। प्रकाशक की लिखित पूर्व अनुमति के बिना इस पुस्तक का पुनर्मुद्रण, चाहे वह फ़ोटोकॉपी हो या रिकॉर्डिंग, किसी भी रूप में इसमें छपी जानकारी का पुनः उपयोग वर्जित है।

मुद्रक: नियोगी ऑफसेट प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, भारत

विषय सूची

प्राक्कथन 7

यात्रा 9

इतिहास के साथ जीना 13

हैदराबाद हाउस 43
अतिथि देवो भव

बड़ौदा हाउस 67
पटरियों पर तितली

बीकानेर हाउस 79
पधारो म्हारे देस

जयपुर हाउस 105
कला महल

पटियाला हाउस 121
इंसाफ़ का मंदिर

त्रावणकोर हाउस 129
हाथीवाली कोठी

दरभंगा हाउस 143
पूरब से पश्चिम मिले

अन्य महल 153
बिखरी हुई पंखुड़ियाँ

शाही महलों को बनाने की योजना 191
वास्तुशास्त्रीय दृष्टिकोण

आभार 200

संलग्नक 202

नई दिल्ली, सिविल लाइंस और पुरानी दिल्ली में मौजूद शाही महलों की सूची 206

संदर्भ ग्रंथ सूची 217

चित्र आभार 220

अनुक्रमणिका 222

प्राक्कथन

भारतीय इतिहास से जुड़े अब भी ऐसे बहुत-से रहस्य हैं, जिन्हें शोधकर्ताओं द्वारा उजागर किया जाना बाक़ी है। अकसर ऐसे कई पहलुओं पर ध्यान नहीं दिया जाता है, जो बाद में काल के गर्त में कहीं खो जाते हैं। राजनीतिक कारणों से भारत के भूगोल का समय-समय पर नाम, वर्तनी और संरूपण में परिवर्तन होता रहता है। 16वीं सदी में हम जिन जगहों को मेवाड़ या मारवाड़ कहते थे, 19वीं सदी में उन जगहों का नाम उदयपुर और जोधपुर की शाही रियासतों में तबदील हो जाता है, जबकि 21वीं सदी में इसे राजस्थान के नाम से जाना जाता है।

दिल्ली में स्कूल के बच्चे अगर बस की खिड़की से बाहर झाँक कर सड़कों पर लगे बोर्ड पढ़ें, तो हैरान होंगे कि बहावलपुर या त्रावणकोर कहाँ है? 1947 के बाद हम भारत को एक अखंड देश के रूप में देखना चाहते थे, पर इस कोशिश में हम यह भूल गए कि 1947 में इस उपमहाद्वीप में, विशाल हैदराबाद से लेकर छोटे-से जामनगर तक, अलग-अलग आकार के 565 रजवाड़े थे। उनके शासक दिल्ली में हुए तीन दरबारों (1877, 1903 और 1911) की तसवीरों में नज़र आते हैं। इन रजवाड़ों के महत्व को इन्हें दी जाने वाली तोपों की सलामी से आँका जाता था।

अंतिम दरबार के बाद ब्रिटिश भारत की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली में स्थानांतरित हो गई और जिन रजवाड़ों ने 1911 के दरबार में ब्रिटिश प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लिया था, उन्हें नई राजधानी में भूखंड दे दिए गए। 1920 के दशक से 1940 तक ऐसा निरंतर होता रहा। नई विधायिका के अंतर्गत चेंबर ऑफ प्रिंसेस का गठन किया गया। इन रजवाड़ों को नई शीतकालीन राजधानी में अपनी उपस्थिति दर्ज़ करने का अवसर मिला, साथ ही इन शाही महलों के निर्माण से यहाँ पर पहले से बने सरकारी आवासों की एकरूपता में परिवर्तन आया।

लेकिन यह सब अधिक समय तक नहीं चला। दूसरे विश्वयुद्ध के समय सरकार ने बहुत-से महलों का अधिग्रहण कर लिया। सैनिकों के लिए जो आवास बनाए गए, उनसे उनके डिज़ाइन की समानता समाप्त हो गई। 1947 में अंग्रेज़ सरकार ने रजवाड़ों के सामने यह विकल्प रखा कि वे अपनी इच्छा से भारत या पाकिस्तान का हिस्सा बनें या फिर अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखें। बहुत-से रजवाड़े यह निर्णय नहीं कर पाए कि वे ख़ुद को क्या उस भारत में रखना चाहते थे, जो सिर्फ़ एक विचार था, लेकिन अचानक से एक राजनीतिक वास्तविकता बन गया था।

1956 में भाषा के आधार पर पुनर्गठित राज्यों में रजवाड़ों को सम्मिलित कर लिया गया जैसा कि 1919 में पूर्वी यूरोप में हुआ था। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक भारत में रजवाड़ों का महत्व कम हो गया। तत्पश्चात 1971 में संसद ने उस विशेष पेंशन (प्रिवि पर्स) को समाप्त करने की सहमति दे दी, जो राजा-महाराजाओं को स्वाधीनता के समय भारत का हिस्सा बनने पर, देने का वचन दिया गया था।

अब दिल्ली में रहने वाले लोग असमंजस के कारण यह नहीं समझ पाते हैं कि जोधपुर मेस का नाम 'जोधपुर मेस' क्यों पड़ा, या फिर ज़मीन के एक खाली टुकड़े को 'कपूरथला प्लॉट' क्यों कहा जाता है, नेशनल गैलरी ऑफ़ मॉडर्न आर्ट की इमारत को 'जयपुर हाउस' क्यों कहते हैं; और दूरदर्शन के कार्यालय को 'मंडी हाउस' के नाम से क्यों जाना जाता है!

इन सभी प्रश्नों का उत्तर संभवतया हमें इस पुस्तक में मिलेगा। यह पुस्तक उत्कृष्ट शोध एवं अनुसंधान का परिणाम है और इस प्रशंसनीय प्रयास के लिए दिल्लीवासियों को इसका आभारी होना चाहिए। हम लोग दिल्ली के अनेक हिस्सों से होकर गुज़रते हैं, लेकिन हमारे पास उन्हें रुक कर देखने का समय भी नहीं होता। हममें से अधिकतर लोगों के लिए लुटियन्स की दिल्ली का तात्पर्य राष्ट्रपति भवन और सचिवालय से सज्जित सेंट्रल विस्टा से ही है। लुटियन्स के वास्तुशिल्प के प्रति आकर्षण के कारण इन कालातीत भवनों के बारे में कई पुस्तकें लिखी गई हैं। इन भवनों में आज भी पदानुक्रम और कई रीति-रिवाज़ों का पालन किया जाता है और ये आम लोगों की पहुँच से दूर हैं।

दूसरी ओर, रजवाड़ों के महल कभी भी अपने रूप एवं कामकाज की दृष्टि से समय के गर्त में गुमनाम नहीं रहे। लेकिन किसी ने उनके ऐतिहासिक पक्ष के विषय में जानने का प्रयास नहीं किया। सन 1921 से 1947 तक के तीन दशक मानो हवा के साथ किसी दूसरी दुनिया में लुप्त हो गए। कम से कम अब तक तो ऐसा ही रहा है।

सुमंत भौमिक ने इस पुस्तक में वास्तुशिल्पीय विवरणों को बहुत ध्यान से सँजोने का प्रयास किया है, जो इन भवनों को बनवाने वाले राज-रजवाड़ों के जीवन की झलक दिखाती है, साथ ही हमें इन धनाढ्य और प्रसिद्ध लोगों के सामाजिक जीवन के विषय में भी पता चलता है। बड़ौदा, हैदराबाद और कोचीन के भवनों के विवरणों से उनकी विविधता और भव्यता का ज्ञान होता है। इसके साथ-साथ कभी हास्य तो कभी विडंबना का अहसास होता है, लेकिन समानुभूति का भाव हमेशा बना रहता है। इस दृष्टि से यह पुस्तक शाही महलों के बंद तालें खोल रही है।

–नारायणी गुप्ता

यात्रा

सर्दियों और वसंत के मौसम में इस शहर के उद्यान अलग-अलग तरह के फूलों से सज जाते थे। मुझे लगता है कि मैदानों में मिलने वाले बेहतरीन गुलदाऊदी और डहलिया को दिल्ली में उगाया जाता था, जिसे उत्तर भारत का फ्लोरेंस कह सकते हैं।

उन दिनों नई दिल्ली या रायसीना में देखने के लिए कुछ अधिक नहीं था। शाही ख़ानदान के लोगों के क़ब्रिस्तानों से जैसे एक नई थीब्स नगरी का जन्म हो रहा था। ये क़ब्रें मुगल दिल्ली के दक्षिण-पूर्व में मौजूद थीं। यहीं पर महान योजनाकार और वास्तुकार सर एडविन लुटियन्स के शिल्पियों के हथौड़े और छेनी की आवाज़ों से दिल्ली गूँज उठी। यह गूँज बाँसुरी की तरह मधुर नहीं थी लेकिन एक नए शहर का आगाज़ अवश्य थी।

–मुकुन्द के. चक्रवर्ती,
ए बैक बैंचर्स ऑटोबायोग्राफ़ी

प्रतिदिन मैं गाड़ी से दफ़्तर जाते समय सी-हेक्सागन, या प्रिंसेस पार्क, प्रसिद्ध इंडिया गेट से होकर गुज़रता हूँ। यह जगह आज नई दिल्ली की सबसे बड़ी पहचान है। मैं खूबसूरत सेंट्रल विस्टा से निकलकर विजय चौक होता हुआ अपने दफ़्तर पहुँचता हूँ। यहाँ इतिहास के मूक गवाह की तरह खड़ी ये इमारतें आज भी वैसे ही मौजूद हैं, जैसे सौ साल पहले होती थीं। प्रिंसेस पार्क इलाक़े में भव्य हैदराबाद हाउस, बड़ौदा हाउस, पटियाला हाउस, जयपुर हाउस और बीकानेर हाउस सबसे जानी-पहचानी इमारतें हैं। इसी तरह की कई अन्य इमारतें शाहजहाँ रोड, मानसिंह रोड और जे-सर्कस, या मंडी हाउस सर्कल के आसपास स्थित हैं। मैं अकसर उन दिनों के बारे में सोचा करता था, जब इन शानदार इमारतों में अनेक मेहमानों की आवाजाही लगी रहती थी। इनमें अधिकतर पुराने रजवाड़ों के वे महाराजा रहे होंगे, जो यहाँ कभी-कभी ही आकर ठहरते थे। तब यहाँ काफ़ी रंग-बिरंगी शोभा यात्राएँ दिखाई देती होंगी। ऐसा 1911 से 1956 तक या शायद उससे भी आगे तक होता रहा होगा। ऐसी कुछ इमारतों को अब गिरा दिया गया है, जिससे इस शहर के इतिहास का लगभग एक हिस्सा हमेशा के लिए खतम हो गया है।

विचारों की यही शृंखला मुझे नई दिल्ली के राजधानी बनने से जुड़ी उस घोषणा की तरफ़ ले जाती है, जो किंग-एम्परर जॉर्ज पंचम ने 1911 के दिल्ली दरबार में की थी। उन्होंने इस क़ीमती ज़मीन को रजवाड़ों को क्यों और कैसे आवंटित किया? किसने इसका डिज़ाइन बनाया और निर्माण-कार्य कैसे शुरू हुआ? कौन इन भव्य इमारतों में आकर रहा और यहाँ किस तरह के समारोह आयोजित हुआ करते थे? मैंने इन सवालों के पीछे छिपी कहानी को जानने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में मैंने अभिलेखागार के कुछ पुराने दस्तावेज़ों, सरकार

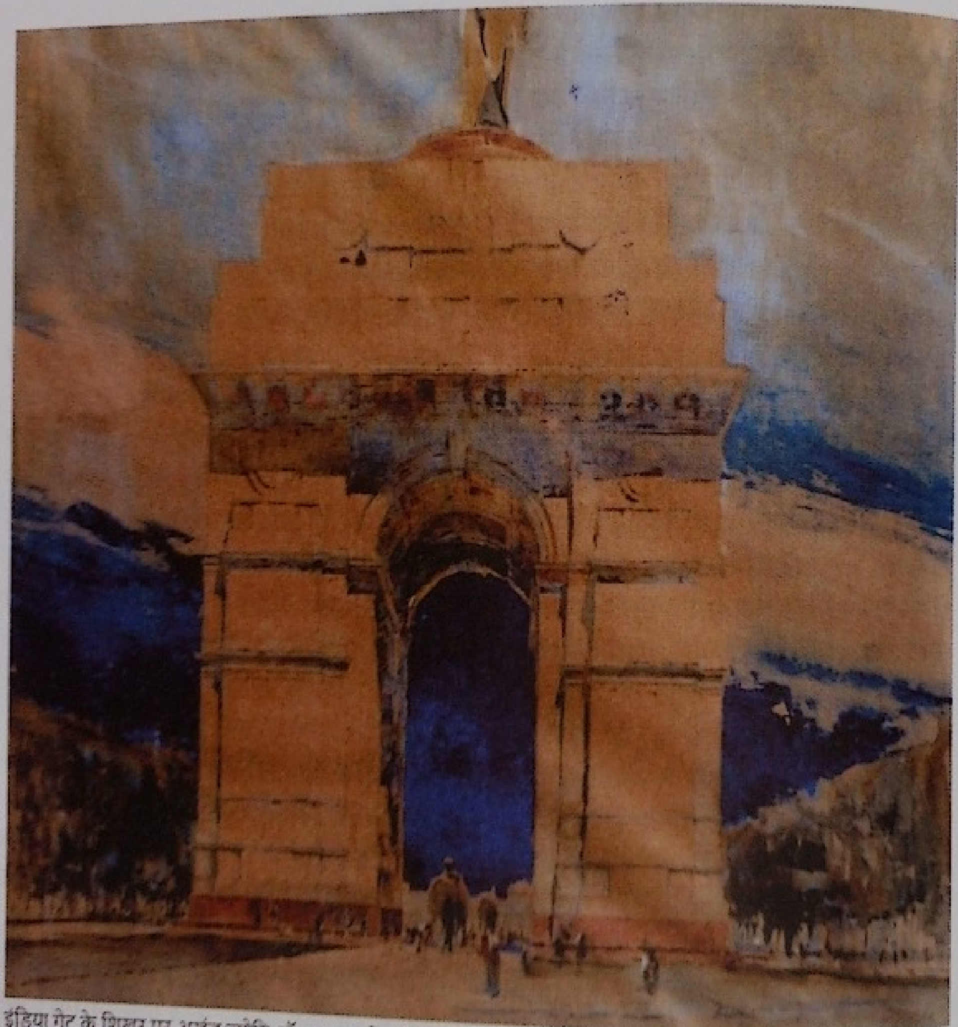

इंडिया गेट के शिखर पर अखंड ज्योति: वॉटर कलर से बनी तसवीर।

और रजवाड़ों के बीच हुए पत्राचार की पड़ताल की। मैं इतिहासकारों, सरकारी अधिकारियों, पूर्व शाही परिवारों के सदस्यों से भी मिला, उनके साक्षात्कार रिकॉर्ड किए और सौभाग्य से मैं उनके व्यक्तिगत संग्रह तक भी अपनी पहुँच बना पाया।

अपने शोध के दौरान मुझे कुछ अनोखे स्रोतों से भी मदद मिली, जिनके बारे में मैं पहले नहीं जानता था। इसके अतिरिक्त विभिन्न सरकारी अभिलेखागारों के अधिकारियों ने भी मेरी सहायता की। मैंने तत्कालीन रजवाड़ों वाले भारत के कई स्थानों की यात्राएँ कीं। इस बीच कई नए दोस्त बने, जिनकी मदद और मेहमाननवाज़ी को मैं कभी नहीं भुला पाऊँगा। इस दौरान मुझे कुछ निराधार कही-सुनी बातों की जाँच करने का भी अवसर मिला। यह

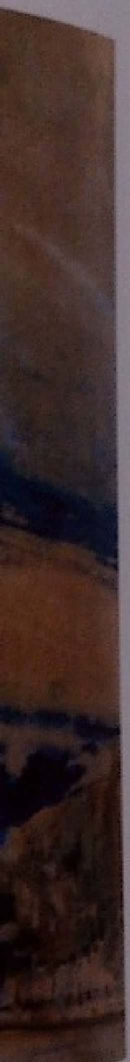

कहा जाता था कि इन शाही महलों का निर्माण चेंबर ऑफ प्रिंसेस के गठन के परिणामस्वरूप हुआ था या यह कि ये शाही महल प्रिंसेस पार्क में इसलिए मौजूद थे क्योंकि पार्क के बीच में किंग जॉर्ज पंचम की प्रतिमा लगी हुई थी। यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय राजाओं को भूखंडों के आवंटन की प्रक्रिया 1921 में चेंबर ऑफ प्रिंसेस के कामकाज शुरू करने से काफ़ी पहले ही शुरू हो गई थी, और यह सब 1937 में इंडिया गेट के पीछे किंग जॉर्ज की प्रतिमा के उद्‌घाटन से बहुत पहले की बात थी।

लेकिन यह यात्रा इतनी आसान भी नहीं रही क्योंकि इसके लिए मुझे कुछ पूर्व शाही परिवारों के निजी संग्रहों तक पहुँच बनानी पड़ी। उनसे मिलकर उन्हें यह समझाना बहुत आवश्यक था कि इतिहास को किसी न किसी रूप में बचाए रखने की आवश्यकता है। यह नई दिल्ली के निर्माण से जुड़े इतिहास का एक भाग था। इस इतिहास के साथ उनसे जुड़ी घटनाओं के चित्र भी लगाए जाने आवश्यक थे। इनमें से कुछ तसवीरें तो पूरी तरह उनकी निजी थीं। लेकिन मैं सौभाग्यशाली रहा कि मुझे न केवल ऐसी बहुत-सी तसवीरें दी गईं, बल्कि इन परिवारों के सदस्यों ने अपनी यादों को भी मेरे साथ साझा किया। मैं सभी महलों के बारे में सारी जानकारी एकत्रित नहीं कर सका, फिर भी मैंने उनमें से अधिक से अधिक जानकारी को इस पुस्तक में देने की पूरी कोशिश की है। रजवाड़ों वाले भारत के बारे में सूचना का कोई एकमात्र स्रोत नहीं है। केवल राष्ट्रीय अभिलेखागार और राज्यीय अभिलेखागार में ही फ़ाइलें मौजूद हैं। (नेशनल आर्काइव्स ऑफ इंडिया, दिल्ली स्टेट आर्काइव्स और राजस्थान स्टेट आर्काइव्स को एनएआई, डीएसए और आरएसए के संक्षिप्त नाम दिए गए हैं) बाक़ी जानकारियाँ संबंधित रजवाड़ों के निजी संग्रहों में मौजूद हैं। इनमें से कुछ ने अपने आर्काइव्स को इतने अच्छे तरीक़े से सँजो रखा है, जो शोधकर्ताओं के लिए किसी वरदान से कम नहीं है।

यह कहा जा सकता है कि भारत के लगभग 600 रजवाड़ों की प्रशासनिक शैली अलग-अलग थी। इनमें से कुछ रजवाड़े दस्तावेज़ों को सहेज कर रखने में बेहद सावधानी बरतते थे, तो कुछ इससे अलग थे। स्रोत बताते हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात बहुत-से रजवाड़ों ने अपनी अधिकतर चीज़ों को जलाना या फिर जलाशयों में फेंकना उचित समझा ताकि वे पूरी तरह नष्ट हो जाएँ। तसवीरें ज़रूर बची रहीं और उन्हें आम-लोगों की नज़रों से बचा कर निजी संग्रह में रखा गया। मैं आशा करता हूँ कि पूर्व शाही परिवार अब इन जानकारियों का खुलासा करें ताकि भारत का आम इनसान देश के शाही अतीत की एक गौरवशाली झलक पा सके।

इसी दौर में, नई दिल्ली में बहुत-से महल बने लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध के समय सरकार ने इन्हें युद्ध के उद्देश्यों से अपने नियंत्रण में ले लिया। फिर उसके बाद शाही परिवार इनका उपयोग नहीं कर सके। इनमें से कई महलों में अब कार्यालय और प्रतिष्ठान बन गए हैं, जहाँ प्रवेश का अधिकार सीमित है। इसलिए इनमें से कुछ के विषय में विस्तार से नहीं बताया जा सका है। फिर भी उपलब्ध सूचनाएँ उस दौर की नई दिल्ली के सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर काफ़ी प्रकाश डालती हैं।

हम देख सकते हैं कि नई दिल्ली में इन शाही महलों के जीवन काल के दो चरण हैं– एक स्वतंत्रता से पहले ब्रिटिश काल का और दूसरा स्वतंत्रता के बाद वाला। स्वतंत्रता से पहले, इन भवनों में सामाजिक और निजी समारोह होते थे, क्योंकि महल महाराजाओं की निजी संपत्ति थे, इसलिए उन्होंने शानदार पार्टियों के आयोजन और मेहमानों के

मनोरंजन के समकालीन तौर-तरीक़ों को निभाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लेकिन स्वतंत्रता से कुछ पहले ये शाही महल राजाओं के बीच होने वाले राजनीतिक बैठकों का केंद्र बन गए। आज़ादी के बाद इनका प्रयोग उपयोगिता के उद्देश्य से अधिक होने लगा, क्योंकि इनमें से अधिकतर भवनों को सरकारी और दूसरे कार्यालयों में बदल दिया गया था।

इन दोनों ही चरणों में इन भवनों का ऐतिहासिक महत्व बहुत अधिक रहा है। लेकिन यह पुस्तक संपत्तियों के बारे में नहीं है, बल्कि इन भवनों के इतिहास के बारे में है, जो आज नई दिल्ली के शहरी विन्यास का एक हिस्सा हैं। इन्हें उस दौर के प्रतिभावान वास्तुशिल्पियों ने डिज़ाइन किया था। निश्चित रूप से इन भवनों ने राजधानी की सुंदरता में चार चाँद लगाए हैं।

इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि नई दिल्ली के इन महलों की भव्यता और वास्तुशिल्प की तुलना संबंधित राज-रजवाड़ों में स्थित शाही महलों से नहीं की जानी चाहिए क्योंकि इन भवनों का निर्माण मूल रूप से अतिथि गृहों के रूप में किया गया था, जिनमें नई दिल्ली आने वाले राजा-महाराजा ठहरा करते थे।

इस पुस्तक में महाराजा, महाराजाधिराज, महारावल, महारानी, नवाब या राजा की पदवी का प्रयोग पूर्ववर्ती शाही क्रम के अनुसार किया गया है। ये पदवियाँ ब्रिटिश और उसके परवर्ती समय में भी व्यवहार में लाई जाती थीं। यह बात दिलचस्प है कि अंग्रेज़ों के सरकारी दस्तावेज़ों में इन्हें 'राजा' नहीं बल्कि 'सत्ताधारी राजा और प्रमुख' कहा जाता था, क्योंकि किंग का ख़िताब भारत के ब्रिटिश किंग-एम्परर के लिए ही आरक्षित रखा गया था (सुविधा के लिए 'सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों' को आगे आने वाले अध्यायों में कहीं-कहीं 'राजाओं' के तौर पर संबोधित किया गया है)। हिज़ हाइनेस या हर हाइनेस का प्रयोग राजाओं के सम्मान के लिए किया जाता था। उन्हें उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार ही तोपों की सलामी दी जाती थी, जिसकी संख्या समय-समय पर बदली जाती थी। ज़ाहिर है आप इस बात से सहमत होंगे कि तब दुनिया कितनी अलग थी।

आरंभिक अध्याय में राजधानी के स्थानांतरित होने से जुड़े इतिहास और उसकी पृष्ठभूमि, भारतीय राजाओं की प्रतिक्रियाएँ, राजधानी के निर्माण, भूखंडों के आवंटन और उनका मूल्य तय करने, निर्माण की प्रक्रिया, महत्वपूर्ण घटनाओं आदि के बारे में विस्तारपूर्वक बताया गया है। इनके विषय में *द टाइम्स*, लंदन के संबंधित उद्धरणों को भी शामिल किया गया है। लेकिन यह पुस्तक शाही महलों के विवरण के बिना पूरी नहीं हो सकती थी। अतः हैदराबाद, बीकानेर, जयपुर, बड़ौदा, पटियाला, त्रावणकोर जैसे रजवाड़ों के शाही महलों से संबंधित अध्यायों के अतिरिक्त भारत की सबसे बड़ी ज़मींदारी, दरभंगा, के महल की जानकारी भी इस पुस्तक में दी गई है।

कुछ महलों से संबंधित अधिक जानकारी नहीं मिल पाई, इसलिए उनका संक्षिप्त विवरण एक अलग अध्याय में दिया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए शाही महलों के इतिहास, अप्रयुक्त भूखंडों, निर्माण के वर्ष, वास्तुशिल्पी के नाम और अतीत व वर्तमान में यहाँ रहने वाले लोगों या संस्थाओं की जानकारी से जुड़ी एक व्यापक तालिका भी दी गई है। सभी अध्यायों में ऐसे सामाजिक अवसरों के चित्र शामिल किए गए हैं, जो महलों में आयोजित होते थे और साथ ही सुसंगत योजना और चित्र भी दिए गए हैं।

इतिहास के साथ जीना

दिल्ली से शुरुआत

कई साम्राज्य बने भी और नष्ट भी हुए; अनेक सम्राटों की विजय यात्राएँ भी निकलीं और अपनी इच्छानुसार सब कुछ ध्वस्त करने के बाद उन्होंने नए-नए साम्राज्य भी गठित किए और प्रजा पर संपूर्ण आधिपत्य घोषित कर दिया। उन्होंने अपनी विजय की विशिष्ट पहचान की प्रतीक– एक नई राजधानी– की स्थापना की, जिसका नामकरण सम्राट के नाम पर किया गया। नए शहरों ने नया वास्तुशिल्प, नई जीवनशैली, नई संस्कृति और नई आशाओं का संचार किया।

दिल्ली ने ऐसे साहसिक लोगों को भी देखा है, जिन्होंने यहाँ अपनी वीरता को सिद्ध करके दिखाया।

1857 में दिल्ली में विद्रोह कुचलने के कुछ समय पश्चात अंग्रेज़ी प्रशासन को 'इंपीरियल' दरबारों को आयोजित करने के महत्व का एहसास हुआ, जहाँ स्वामीभक्त प्रजा ब्रिटिश क्राउन के प्रति सम्मान प्रकट करती थी। दिल्ली में 1877, 1903 और 1911 में तीन शाही दरबार आयोजित किए गए। इनमें से अंतिम दरबार सबसे यादगार था, क्योंकि इसमें किंग-एम्परर जॉर्ज पंचम और उनकी पत्नी, क्वीन मेरी, दोनों मौजूद थे।

1911 के दिल्ली दरबार में शाही पवेलियन, जहाँ समारोह आयोजित किए गए थे। शाही उद्घोषणा के लिए एक और पवेलियन को थोड़ी दूर बनाया गया था, यहाँ अर्द्धचंद्राकार आकृति में लगभग 12 हज़ार अतिथियों के लिए स्थान थे।

मिट्टी में मिल चुके साम्राज्यों की धूल पर इतिहास के एक लंबे दौर की रचना हुई। दिल्ली सात शताब्दियों में सात राजधानियों की साक्षी बनी। मुग़ल सम्राट शाहजहाँ ने 1639 में दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया और इसे नाम दिया– शाहजहाँनाबाद। अंग्रेज़ों ने 1857 में इस शहर को अपने नियंत्रण में ले लिया लेकिन इस शहर के नागरिकों के मानस-पटल से मुग़लकालीन शानो-शौकत को मिटाया नहीं जा सका।

शाही दरबार

दिसंबर 1911 के दिल्ली दरबार के विशाल आयोजन का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य की ताक़त को दिखाना और मुग़ल मिथक को समाप्त करके इंपीरियल यानी शाही प्रभुत्व को जताना था। शाही खेमे में किंग जॉर्ज पंचम और उनके अनुयायियों के साथ कई रजवाड़ों के शासक और प्रमुख भी मौजूद थे। अंग्रेज़ सरकार एक-तिहाई भारतीय साम्राज्य और कुल 20 प्रतिशत आबादी पर नियंत्रण रखने वाले उन राजाओं के महत्व को अनदेखा नहीं कर सकती थी।

नई राजधानी की घोषणा

12 दिसंबर 1911, दिल्ली के लिए एक ऐतिहासिक दिन साबित हुआ। किंग-एम्परर की इस घोषणा ने दरबार में उपस्थित सभी को आश्चर्यचकित कर दिया कि ब्रिटिश भारत की राजधानी को कलकत्ता से दिल्ली स्थानांतरित किया जाएगा। एक प्रशासनिक आदेश द्वारा दिल्ली और बल्लभगढ़ के 1.15 लाख एकड़ भूमि पर फैले हुए 128 गाँवों को सरकार ने अधिगृहीत कर लिया। ऐसा कहा जाता था कि जिस भी शासक ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया, वह अधिक समय तक उस पर शासन नहीं कर सका।

दिल्ली को राजधानी बनाने के कई फ़ायदे थे। इनमें सबसे प्रमुख था कि इसे सदियों से भारत की सर्वसम्मत राजधानी माना जाता रहा है। लुटियन्स की दिल्ली की परिकल्पना से पहले सात बार ऐसा हो चुका था। इसे भाग्य ही कहेंगे कि शाहजहाँ की प्यारी दिल्ली 'पुरानी दिल्ली' बन गई, जबकि इसके नए रूप को 'नई दिल्ली' कहा जाने लगा। सरकार को इस बात का पूरा भरोसा था कि 'सत्ताधारी प्रमुख और उत्तर भारत के लोग इस निर्णय से खुश होंगे और इस पूरे महाद्वीप में अधिकतर भारतीय इसका स्वागत करेंगे।'[1]

ऊपर व नीचे: 1903 के दिल्ली दरबार के अवसर पर सुसज्जित हाथियों का जुलूस और हाथियों द्वारा खींची जाने वाली बग्घियाँ। रजवाड़ों वाला भारत ऐसे समारोहों के दौरान हाथियों को प्रदर्शित करने को लेकर बड़ा गौरव महसूस करता था।

द टाइम्स, बुधवार, 24 मई 1911

भारत के राजा

देशी रियासतों का महत्व

भारतीय रजवाड़ों ने शाही ताज के प्रति जो निष्ठा दिखाई है, ब्रिटिश शासन को क़ायम रखने में उसका बहुत महत्व है। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अंग्रेज़ों के साथ उनके जुड़ाव की अवधारणा इस शाही ताज के साथ ही शुरू और ख़तम होती है। संधियाँ और सहमति पत्र, सरकार और मंत्रिमंडल, सर्वोच्च शासक की तुलना में गौण हैं। ये शासक विशेष रूप से न तो अंग्रेज़ी शासन और न ही इंगलैंड के प्रति वफ़ादार हैं। ये ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति पूरी ईमानदारी से समर्पित नहीं हैं, हालाँकि यदि इस बात को सोच-समझ कर प्रोत्साहित किया जाता तो इस तरह का एहसास पैदा हो सकता था। क्राउन यानी शाही ताज ही उनकी राजभक्ति का कारण है, फिर भी मौजूदा प्रणाली में उनके जुड़ाव को जिस भी रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता हो, इसका परिणाम भारत में अंग्रेज़ों के लिए महत्व रखता है। राजाओं का वफ़ादारीपूर्ण सहयोग अंग्रेज़ों के नियंत्रण को बनाए रखने के लिए एक आवश्यक शर्त है। अगर यह सहयोग नहीं रहता है तो हमारे शासन की सुरक्षा गंभीर रूप से प्रभावित होगी। लेकिन यह सहयोग बना रहा, क्योंकि भारत के राजा और अंग्रेज़ धीरे-धीरे यह समझ चुके हैं कि उनके हित काफ़ी हद तक एक-दूसरे से मिलते हैं, जबकि पहले ऐसा नहीं सोचा जाता था। कभी-कभी हमें बताया जाता है कि भारत के रजवाड़े उस दौर के बारे में भी सोचते हैं, जब कोई महाराजा अपने सैनिकों के बल पर जीत हासिल किया करता था। नई व्यवस्था निष्क्रियता की वकालत करती है और साहसिक कार्यों को निरुत्साहित करती है। लेकिन जो राजा बुद्धिमान होता है; और फ़ायदे व नुकसान का संतुलन बना कर चलता है, वह इस बात को अच्छी तरह जानता है कि इससे सुरक्षा अवश्य मिलेगी और बहुत-से अन्य लाभ भी होंगे। कुछ ऐसे स्थानीय शासक भी हैं, जो यह नहीं समझते हैं कि हमलों से बचने और अपने इलाक़ों में शांति बनाए रखने के लिए संप्रभुता के रूप में कुछ मूल्य तो चुकाना ही पड़ता है। भारत में हाल के वर्षों में आए बदलावों ने इन राज-रजवाड़ों की चिंता को बढ़ा दिया है। उन्हें लगता है कि विद्रोह की जो भावना उभरने लगी है, वह ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उतनी मुखर नहीं है, जितना कि हर तरह के संगठित प्राधिकार के विरुद्ध है। वे अच्छी तरह जानते हैं कि भले ही आज भारत में अंग्रेज़ों का शासन है, लेकिन कल इनका अपना समय भी आएगा। अधिकतर राजा भारतीय राजनेताओं की महत्वाकांक्षाओं को भी संदेह की दृष्टि से देखते हैं। उन्हें लगता है कि जब सरकार बनेगी, तो वह उनकी इच्छाओं के अनुरूप होगी और ऐसी स्थिति में रजवाड़ों की निजी और प्राचीन प्रणालियों के लिए उसमें कोई जगह नहीं होगी। इसलिए इस क्रांति की लहर को थामने के सिलसिले में उनकी सहानुभूति अंग्रेज़ों के साथ है, क्योंकि हो सकता है कि इस क्रांति से वे निपट ही न पाएँ। हाल के बरसों में भारत में तेज़ी से बदलते हुए घटनाक्रम से रजवाड़ों को ज़्यादा महत्व मिलने लगा है, जिसे आज भी ठीक से स्वीकार नहीं किया गया है। ब्रिटिश प्रशासन के लिए ये रजवाड़े तूफ़ानी लहरों के सामने तटबंध के जैसे एक सहारा बन गए हैं। आज अंग्रेज़ इन रियासतों को अपने अधीन तो नहीं करना चाहते हैं, लेकिन वे इस बात को पहले से कहीं अच्छी तरह समझने लगे हैं कि ये राज-रजवाड़े उनके लिए काफ़ी अहमियत रखते हैं, इसलिए नहीं कि वे कुछ सहायता करेंगे, अपितु उनके अस्तित्व से शासन को बल मिलता है। यह कहना अनावश्यक होगा कि जब तक ब्रिटिश शासन मजबूत और आत्मनिर्भर है, तभी तक इन राजाओं से मदद मिलेगी, जैसे ही अंग्रेज़ सरकार कमज़ोर और अप्रभावी होगी, यह समर्थन बड़ी तेज़ी से घटने लगेगा।

24 मई 1911 को द टाइम्स में छपे आलेख की अनुवादित प्रतिकृति।

दिल्ली दरबार का आयोजन बेहद सफल रहा। हज़ारों लोग किंग जॉर्ज और उनकी पत्नी क्वीन मैरी की एक झलक पाने के लिए एकत्रित हुए। राजाओं और प्रमुखों ने भी पूरे उत्साह के साथ किंग और क्वीन के प्रति सम्मान व्यक्त किया और ब्रिटिश क्राउन के प्रति अपनी वफ़ादारी को दोहराया। किंग और उनकी सरकार को भारतीय रजवाड़ों के इस आश्वासन से बहुत संतोष मिला। यह आश्वासन राजनीतिक गठजोड़ और स्थानीय प्रशासन दोनों के लिए अच्छा था। राजधानी को दिल्ली स्थानांतरित करने के निर्णय का रजवाड़ों ने आमतौर पर स्वागत ही किया, विशेष रूप से उन रजवाड़ों ने, जो दिल्ली के नज़दीक राजपूताना और पंजाब में थे।

रजवाड़ों वाला भारत

अंग्रेज़ों के शासन वाला भारतीय साम्राज्य दो प्रमुख हिस्सों में बँटा हुआ था। ब्रिटिश भारत वह हिस्सा था,

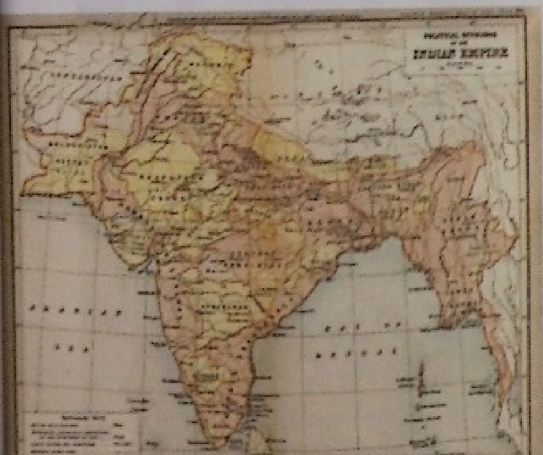

ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का 1909 का नक्शा, इसमें रजवाड़ों वाला भाग पीले और अंग्रेज़ों वाला भाग गुलाबी रंग में दिख रहा है। ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के दो प्रमुख हिस्सों को ब्रिटिश भारत और रजवाड़ों वाला भारत का नाम दिया गया था।

जहाँ अंग्रेज़ों का सीधा प्रशासनिक नियंत्रण था और दूसरा रजवाड़ों वाला भारत, जिसका प्रशासन राज-रजवाड़े और प्रमुख चलाते थे। यह भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का लगभग एक-तिहाई हिस्सा था। इनमें से कुछ रजवाड़े इंग्लैंड से बड़े थे और कुछ छोटे। इनके द्वारा उगाहे जाने वाले राजस्व और शासकों की शाही जीवनशैली में अंतरराष्ट्रीय प्रेस की बड़ी दिलचस्पी थी। हैदराबाद के निज़ाम को 'दुनिया का सबसे अमीर व्यक्ति' माना जाता था। हैदराबाद के निज़ाम का प्रतिनिधित्व करने वाले नवाब सर अकबर हैदरी का लंदन गोलमेज सम्मेलन, 1930 में दिया गया वक्तव्य– 'जहाँ तक हैदराबाद और दूसरे रजवाड़ों का सवाल है, मैं ब्रिटिश साम्राज्य के लोगों और पूरी दुनिया को यह भरोसा दिलाना चाहता हूँ कि यहाँ के राजाओं और शाही ताज के बीच का रिश्ता कभी खतम नहीं होगा'– अत्यंत महत्वपूर्ण था।[2]

यह ध्यान देने योग्य है कि अंग्रेज़ सरकार रजवाड़ों के प्रशासन में प्रत्यक्ष रूप से कोई हस्तक्षेप नहीं करती थी, लेकिन ब्रिटिश रेज़ीडेंट और एजेंटों के रूप में उसका अप्रत्यक्ष नियंत्रण रहता था, जो अकसर दरबार के सलाहकारों की भूमिका निभाते थे। इन रजवाड़ों का इतिहास मुग़लों और उनसे भी पहले से चला आ रहा था। इनके आपसी मतभेद के कारण अंग्रेज़ कई रजवाड़ों पर आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुए और उन्हें अंग्रेज़ों के साथ संधियों पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया गया। सैद्धांतिक रूप से अंग्रेज़ों को इन रजवाड़ों के कामकाज में दख़ल देने का कोई अधिकार नहीं था लेकिन फ़ैसले और दिशा-निर्देश लेने के मामले में ये रजवाड़े ब्रिटिश सरकार पर काफ़ी हद तक निर्भर थे। रजवाड़ों के दैनिक कामकाज में वाइसराय से मुलाक़ात, वाइसराय द्वारा रजवाड़े का दौरा करना या ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा मूर्तियों

का अनावरण किया जाना सबसे महत्वपूर्ण अवसर माने जाते थे।

कुल मिलाकर अंग्रेज़ों के शासन वाले भारत यानी ब्रिटिश भारत और रजवाड़ों वाले भारत के परस्पर संबंध बहुत जटिल थे। राष्ट्रवादी आंदोलन के अधिकाधिक मजबूत होते जाने से यह रिश्ता विश्वास की अपेक्षा मजबूरी में बदल गया था। राजा-महाराजा मानते थे कि अगर वे ब्रिटिश क्राउन के साथ सीधा संबंध रखेंगे, तभी उनकी स्थिति सुरक्षित रह पाएगी। अंग्रेज़ों के सहयोगी के तौर पर उनके पास सरकार के साथ तालमेल बनाए रखने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं था, जिससे राष्ट्रवादी नेताओं को काफ़ी चिढ़ होती थी। इतना ही नहीं, वे परंपराओं और वरीयता क्रम को भी छोड़ने को तैयार नहीं थे। अनुभवी सरकारी अधिकारियों के लिए भी इस संवेदनशील मुद्दे को सँभालना आसान नहीं था। अंग्रेज़ों ने नई राजधानी में रजवाड़ों के लिए जगहों के आवंटन को नियंत्रित करने के सिलसिले में नियम और विनियम बनाने के मामले में काफ़ी संयम बरता और वरीयता क्रम तथा ज़मीन की ज़रूरत को भी ध्यान में रखा।

चेंबर ऑफ प्रिंसेस

किंग-एम्परर की सरकार ने राजाओं को कुछ ज़िम्मेदारियाँ सौंपने का निश्चय किया और उसने 1919 में मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिफ़ॉर्म्स के अनुरूप चेंबर ऑफ प्रिंसेस (नरेन्द्र मंडल) बनाया और इन राज-रजवाड़ों को शासन में प्रतिभागी बनने के लिए आमंत्रित किया।

चांसलर के नेतृत्व में चेंबर के सदस्यों के तौर पर सत्ताधारी राजा और प्रमुख महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार-विमर्श करते थे। प्रमुख रजवाड़ों और कुछ

चेंबर ऑफ प्रिंसेस (नरेन्द्र मंडल), दिल्ली, नवंबर 1924

छोटे रजवाड़ों का प्रतिनिधित्व करने वाले चेंबर के केवल 120 सदस्य थे। चेंबर का मुख्यालय राजधानी में था और राजाओं को इसके सत्रों में हिस्सा लेने के लिए साल में एक बार नई दिल्ली आना होता था। हर साल फरवरी या मार्च में काउंसिल हाउस के निर्धारित हॉल में चेंबर ऑफ प्रिंसेस की बैठक होती थी। इस हॉल में आज भी इन राजाओं के कुलचिह्न मौजूद हैं। अब इसका इस्तेमाल संसद सदस्यों के रीडिंग रूम के रूप में किया जाता है। चेंबर ऑफ प्रिंसेस की भूमिका केवल एक सलाहकार की थी तथा अंतिम फ़ैसला लेने की शक्ति वाइसराय के पास ही थी।

राजा-महाराजा पारंपरिक और सैनिक पोशाकों में सज-धज कर विशेष वाहनों में बैठकर काउंसिल हाउस जाया करते थे। हर साल दिल्ली में होने वाले इस महाआयोजन में इन रंग-बिरंगे जुलूसों की धूम रहती थी और राज-रजवाड़ों की अकूत धन संपदा का प्रदर्शन होता था। भारत के राजा-महाराजा ब्रिटिश समाज की हस्तियों के साथ मेलजोल करते थे। अंतरराष्ट्रीय मीडिया का ध्यान सम्मेलन में होने वाले राजनीतिक विचार-विमर्श से ज़्यादा दिल्ली में एकत्रित होने वाले राजाओं की तरफ़ होता था। 'लगभग सभी राजाओं और महाराजाओं के नई दिल्ली में बहुत बड़े-बड़े आवास हैं, जिनमें वे केवल चेंबर की बैठकों के दौरान ही रहते हैं। लगभग सभी रॉल्स रॉयस कारों में चलते हैं (पटियाला के महाराजा के पास 36 रॉल्स रॉयस हैं)। पिछले सप्ताह बीकानेर का लाल और सुनहरा ध्वज, बहावलपुर का नीला, सफ़ेद और पीला ध्वज और पटियाला का लाल ध्वज देखने को मिला।'[13] दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान राजाओं ने न केवल दिल खोलकर धन राशि दी बल्कि युद्ध प्रयासों में सहायता करते हुए दिल्ली में मौजूद अपने महलों को भी अंग्रेज़ सरकार को उपलब्ध करा दिया। हैदराबाद, बीकानेर, जयपुर, पटौदी, फ़रीदकोट, त्रावणकोर और कपूरथला के महलों को या तो सेना के अधिकारियों या फिर आर्मी मेस के लिए दे दिया गया। ऐसे भी मामले देखने में आए जब युद्ध खतम होने के बाद राजाओं को सरकार से निवेदन करना पड़ा कि अब तो उनके महल खाली करा दिए जाएँ।

दिल्ली का सामाजिक जीवन

अक्टूबर आते ही दिल्ली की चहल-पहल फिर से बढ़ जाती थी, मानो किसी ने जादू की छड़ी से इस शहर को गहरी नींद से जगा दिया हो। अक्टूबर के आख़िर में भारत सरकार शिमला से दिल्ली लौट आती थी, जो अकसर दिल्ली की गरमी से बचने के लिए शिमला स्थानांतरित हो जाया करती थी। फूलों के मौसम में शहर में लोगों की गहमागहमी बढ़ जाती थी, लगता था जैसे फूल उनका स्वागत कर रहे हों। नई दिल्ली 'बग़ीचों की नगरी' के तौर पर जानी जाती थी। चौड़ी सड़कों के दोनों ओर नीले फसेलिया, चटख गुलाबी रंग के लिनेरिया, नीले और लाल फ़्लॉक्स, लाल, कत्थई और हलके नीले रंग के ल्यूपिन, लाल रंग की पॉपी और नीले और लाल रंग वाले पिटूनिया नज़र आते थे। इनकी सुंदरता को गुलाब की झाड़ियों की कतारें और भी बढ़ा देती थीं। सर्दियों का मौसम व्यस्त रहने वालों और फुरसत के क्षणों में आराम फ़रमाने वाले, सभी तरह के लोगों को आकर्षित करता था।

सर्दियों का दौर फरवरी और मार्च तक रहता था और इसी दौरान बहुत-से उत्सव वग़ैरह भी होते थे। इनमें सबसे प्रमुख दिल्ली वीक में इंपीरियल दिल्ली हॉर्स शो, हंट बॉल, वाइसरीगल बॉल, वाइसरीगल गार्डन पार्टी और पोलो जैसे खेलों के टूर्नामेंट्स होते थे। लोग खिलाड़ियों और घुड़सवारों की बहादुरी को देखने के लिए हॉर्स शो और पोलो टूर्नामेंट्स में

द टाइम्स, सोमवार, 16 मार्च,1931
दिल्ली में राज-रजवाड़े

विशेष संवाददाता नई दिल्ली, 15 मार्च

कल होने वाले चेंबर के वार्षिक सत्र के उद्घाटन के लिए 70 से ज़्यादा सत्ताधारी राजा दिल्ली में एकत्रित हुए हैं। 14 मध्य भारत, 14 बॉम्बे प्रेजीडेंसी, 10 राजपूत रियासतों से और कुछ छोटे जत्थे भारत के अन्य हिस्सों से आए हैं।

गोलमेज सम्मेलन में भाग लिए बीकानेर और पटियाला के महाराजा, भोपाल के नवाब, धौलपुर के महाराज राणा और सांगली के प्रमुख साहिब पहले ही पहुँच चुके हैं। कश्मीर के महाराजा अब भी यूरोप में हैं, जबकि अलवर के महाराजा ने अभी तक स्थाई समिति को यह नहीं बताया है कि वे इस सम्मेलन में आना चाहते हैं या नहीं। कई युवा राजा इस सम्मेलन में पहली बार हिस्सा लेंगे, इनमें सबसे मुख्य हैं-- जयपुर के महाराजा, जिन्हें सिर्फ़ दो दिन पहले ही वाइसराय ने सिंहासन पर बिठाया था। काठियावाड़ में स्थित भावनगर के महाराजा के स्थान पर उनके वरिष्ठ मंत्री, सर प्रभाशंकर पटनी आ रहे हैं। अपनी परंपरा को निभाते हुए हैदराबाद के निज़ाम हिस्सा नहीं लेंगे लेकिन उनका प्रतिनिधित्व सर अकबर हैदरी, सर रिचर्ड चैनेविक्स ट्रेंच और लंदन जाने वाले प्रतिनिधि मंडल के अन्य सदस्य करेंगे।

कई रजवाड़े नई दिल्ली में अपने आवासों में ठहरे हुए हैं और यहाँ कई, अपनी रियासत के स्वतंत्र ध्वज फहरा रहे हैं, जैसे कि बीकानेर का लाल और सुनहरा ध्वज, बहावलपुर का नीला, सफ़ेद और पीला ध्वज, दतिया का लाल ध्वज और जोधपुर का बहुरंगी ध्वज। नवानगर के जाम साहिब को पुरानी दिल्ली का माहौल पसंद है और वे पुराने फ़्लैगस्टाफ़ हाउस के निकट संगम केसल में रह रहे हैं। यहाँ पहले मशहूर हस्तियाँ रहा करती थीं, लेकिन अब इसकी पहले जैसी गरिमा नहीं रही। अन्य राजा-महाराजा दिल्ली के होटलों में ठहरे हैं और ये होटल पूरी तरह भर चुके हैं।

द टाइम्स, शनिवार, 23 अगस्त, 1941
युद्ध प्रयासों से बने नए संबंध

देश के युद्ध प्रयासों में भारतीय रियासतों की सहायता से इन रियासतों और ग्रेट ब्रिटेन के बीच वर्षों के संबंध मजबूत होने के साथ-साथ इन रियासतों और अंग्रेज़ शासकों के बीच नए रिश्ते भी पनपे हैं। अंग्रेज़ों के शासन वाले भारत और रजवाड़ों वाले भारत में जो अलगाववादी प्रवृत्तियाँ देखी गई हैं, उनका असर राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था पर भी नज़र आया है। इनमें देश के दो अलग हिस्सों के बीच सहयोग के कारण परिवर्तन हो रहा है और ये अपने संसाधनों को एक समान हित के लिए जुटा रहे हैं।

रियासत चाहे छोटी हों या बड़ी, उन्होंने पर्याप्त धन राशि दी है। हैदराबाद और बैरार के निज़ाम ने पनडुब्बियों का सामना करने में इस्तेमाल होने वाली एक कॉर्वेट के लिए 1 लाख 50 हज़ार पाउंड की राशि दी है। इससे पहले उन्होंने हैदराबाद फ़ाइटर स्क्वाड्रन के लिए 1 लाख 50 हज़ार पाउंड की राशि दी। भोपाल के नवाब ने 54 हज़ार पाउंड क़ीमत की अमेरिकी सिक्योरिटी दी, ग्वालियर के महाराजा ने 2 लाख 50 हज़ार रुपए दान स्वरूप दिए, उनके पहले वाले अनुदानों को मिलाकर कुल राशि 7.5 लाख रुपए हो गई। मैसूर के महाराजा ने 6 लाख रुपए दिए हैं, जिसमें से 5 लाख रुपए विमान ख़रीदने के लिए और 1 लाख रुपए लॉर्ड मेयर फंड के लिए हैं। पोरबंदर के महाराजा राणा ने 1 लाख 20 हज़ार रुपए भेजे, इसमें से आधे से ज़्यादा हिस्सा भारत और ग्रेट ब्रिटेन में विशेष निधियों के लिए है।

पैसा और लोग

रॉयल एयर फ़ोर्स के लिए विमानों की ख़रीद हेतु त्रावणकोर के महाराजा ने 1 लाख 50 हज़ार रुपए, कोल्हापुर के महाराजा ने 2 लाख 40 हज़ार रुपए और पुदुकट्टै के नट्कट्टै चेटियो ने 77 हज़ार रुपए दिए। बड़ौदा के महाराजा ने पहले 45 हज़ार पाउंड की राशि दी और बाद में ग्रेट ब्रिटेन के लिए एक फ़ाइटर एयरक्राफ़्ट ख़रीदने के लिए 5 हज़ार पाउंड और जोड़ दिए। अलवर वॉर परपस कमेटी ने रॉयल एयर फ़ोर्स के लिए दो फ़ाइटर विमानों हेतु 1 लाख 40 हज़ार रुपए दिए हैं और साथ ही भारतीय सेना में एक मोटर ट्रांसपोर्ट यूनिट के लिए वाहन ख़रीदने हेतु 1 लाख 50 हज़ार रुपए भी दिए हैं। मैकेनिकों को प्रशिक्षण देने की भारत सरकार की योजना के समर्थन में जयपुर और भावनगर के महाराजाओं और जाथ के राजा ने प्रशिक्षण उद्देश्यों के लिए निजी विमानों को सरकार के हवाले कर दिया है। बड़ौदा के महाराजा ने भारतीय नौसेना के लिए बारूदी सुरंगों को हटाने वाले ट्रॉलर हेतु वाइसराय को 50 हज़ार पाउंड भेजे हैं और भावनगर दरबार ने 4 लाख 60 हज़ार रुपए क़ीमत के एक ड्रैज़र और चार हॉपर एडमिरेल्टी को उपहार स्वरूप दिए हैं।

16 मार्च 1931 और 23 अगस्त 1941 को द टाइम्स में छपे आलेखों की अनुवादित प्रतिकृति।

वाइसराय हाउस का स्टेट बॉलरूमः इस चित्र को विलियम वॉलकॉट ने बनाया था। इसमें कई साल तक वाइसरीगल बॉल होता रहा। अब इसे राष्ट्रपति भवन के अशोक हॉल के नाम से जाना जाता है।

बाएँ व दाएँ: जयपुर के महाराजा और महारानी दिल्ली में अपने दोस्तों के साथ मैच के बाद होने वाली एक पार्टी का आनंद लेते हुए।

प्रिंस ऑफ़ वेल्स कप, दिल्ली 1939 के विजेता: जयपुर पोलो टीम 'ए' और 'बी' जिसमें कैप्टेन मैककोनल, कुमार अमर सिंह, आर.बी. मानसिंह, राव राजा हनुत सिंह, महाराज प्रीथी सिंह, जयपुर के महाराजा सवाई मानसिंह द्वितीय, राव राजा अभय सिंह और महाराज जब्बार सिंह। टीम 'ए' ने टूर्नामेंट जीता और टीम 'बी' उप-विजेता रही।

बड़ी संख्या में आते थे। ये दोनों ही प्रदर्शन साहस, बहादुरी, सैन्य पराक्रम और गौरव को दर्शाते थे। रजवाड़ों की अपनी टीमें थीं। पटियाला, हैदराबाद, जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, अलवर, कश्मीर और बीकानेर के शाही परिवारों के सदस्य पोलो के माहिर खिलाड़ी थे।

इन खिलाड़ियों ने राधा मोहन कप, ड्यूक ऑफ़ कनॉट्स कप और प्रिंस ऑफ़ वेल्स कप जैसे कई प्रमुख पोलो टूर्नामेंट्स जीते। जोधपुर के राव राजा हनुत सिंह बहुत ही लोकप्रिय थे। 1922 में दिल्ली पोलो सीज़न की रौनक के बारे में उन्होंने एकदम सही विवरण दिया था– 'दिल्ली के इस दृश्य की कल्पना कीजिए– पोलो के मैदान के आसपास 1 लाख 50 हज़ार लोगों की भीड़ जमा है, इन्हीं में इंगलैंड के भावी राजा, वाइसराय, 50 के तक़रीबन महाराजा और राजकुमार, दर्जनों सैन्य जनरल और उच्च सरकारी अधिकारी तथा बेहतरीन पोशाकों में महिलाएँ शामिल हैं। ऐसा माहौल हमारी जीतने की संकल्पशक्ति को और बढ़ा देता था।' पोलो मैच जीतने से जुड़े जोश और संतोष की कोई सीमा नहीं थी। हर कोई मैदान में मौजूद बहादुर खिलाड़ियों की नक़ल करने की कोशिश करता था। जयपुर के महाराजा तो जीतने के बाद अपने घोड़ों को शैम्पेन पिलाते थे। पोलो मैच के बाद दोस्तों और खिलाड़ियों के लिए जो पार्टियाँ दी जाती थीं, उनमें काफ़ी मौज़मस्ती और मनोरंजन हुआ करता था।

नई दिल्ली के शाही महलों में सामाजिक मेलजोल और जश्न एक आम बात थी। बीकानेर के महाराजा यहाँ बीकानेर हाउस में कपूरथला के महाराजा के साथ नज़र आ रहे हैं, साथ में शाही परिवारों के सदस्य और उनका स्टाफ़ भी हैं।

द टाइम्स अख़बार ने नई दिल्ली के सामाजिक माहौल को कुछ इस तरह बयान किया हैः

> नई दिल्ली में सामाजिक जीवन अब भी आरंभिक दौर में है। फ़रवरी का महीना सामाजिक स्तर पर साल का सबसे मुख्य समय होता है, जब भारतीय विधायिका के सत्र के दौरान भारत के हर कोने से लोग यहाँ आते हैं। इंपीरियल दिल्ली हॉर्स शो का प्रभाव देश के एक बड़े हिस्से में मौजूद एक और वर्ग पर नज़र आता है। सत्ताधारी राजा चेंबर ऑफ़ प्रिंसेस की बैठकों के लिए यहाँ आते हैं। प्रिंस ऑफ़ वेल्स पोलो कप और अन्य पोलो आयोजन भी उन्हें यहाँ खींच लाते हैं।[4]

चेंबर ऑफ़ प्रिंसेस की बैठक प्रायः फ़रवरी के महीने में हुआ करती थी। इस दौरान राजा-महाराजा अपने परिवारों और बड़े से काफ़िले के साथ दिल्ली के अपने महलों में आया करते थे। ये लोग आपस में काफ़ी हर्षोल्लास के साथ मिलते थे और रात्रिभोजों का आयोजन किया करते थे। राजा-महाराजा वाइसराय से मिलने जाते थे और बदले में वाइसराय शाही महलों या इंपीरियल दिल्ली जिमख़ाना क्लब में होने वाली पार्टियों की शोभा बढ़ाते थे। इन पार्टियों में बहुत ही ख़ास तरह के भोजन और पेय होते थे, जिन्हें ख़ास पोशाक पहनने वाले ख़ानसामे पेश करते थे। शाम की रौनक शाही वर्ग से संबंध रखने वाले मेहमानों और उच्च सरकारी अधिकारियों की मौजूदगी से और बढ़ जाती थी। इन पार्टियों का समापन बॉलरूम में एक औपचारिक नृत्य के साथ होता था और जोश जगाने वाला संगीत भी बजता रहता था। इस दौरान शिष्टाचार और पदानुक्रम का बहुत ध्यान रखा जाता था। इस अवसर पर राज-रजवाड़े, दूसरे शाही परिवारों, समाज के विशिष्ट लोगों और सरकारी अधिकारियों से ही मिला-जुला

करते थे। राजा-महाराजाओं में ब्रिटिश शाही ताज के प्रतिनिधि यानी वाइसराय से अच्छे कूटनीतिक संबंध बनाने की भी होड़ लगी रहती थी।

ब्रिटिश भारत में सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों द्वारा आवासीय संपत्ति का अधिग्रहण

दिल्ली दरबार के खतम होने पर सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों के पत्रों की संख्या बढ़ने लगी, जिससे प्रशासन सावधान हो गया क्योंकि ये लोग नई राजधानी में अपने लिए एक विशिष्ट क्षेत्र की माँग करने लगे थे।

सरकार ब्रिटिश भारत में अधिगृहीत भूमि पर सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों द्वारा भवन बनाने की अनुमति देने की इच्छुक लग रही थी। 1857 के विद्रोह के कारण प्रशासन राजाओं को ब्रिटिश भारत में रहने की अनुमति देने के प्रति अधिक सतर्क हो गया था। इस संबंध में स्पष्ट आदेश थे कि राजा अपने राज्य से बाहर भूमि न ख़रीद पाएँ। त्रिपुरा के राजा ने 1905 में अपना घर बनाने के लिए चटगाँव में एक भूखंड ख़रीदने की अनुमति माँगी थी। लॉर्ड कर्ज़न ने 1891 में जारी एक सर्कुलर का ज़िक्र किया, जिसके अनुसार ब्रिटिश भारत में रजवाड़े भूमि नहीं ख़रीद सकते थे। उनका कहना था कि:

> राजा वहाँ किसी प्रशासनिक कामकाज या आम जनता के हित के लिए नहीं अपितु निजी स्वार्थ के लिए भूमि ख़रीदना चाहते हैं। उनका यह आवास लेफ़्टिनेंट गवर्नर के आवास से भी भव्य होगा और वह इसका प्रयोग यूरोपीय समाज के मनोरंजन के लिए करेंगे। अधिकारी भी राजा के एहसानमंद हो जाएँगे। वे आने-जाने के लिए राजा की गाड़ियों और घोड़ों का उपयोग करेंगे। इससे स्थानीय समाज का नैतिक पतन और अंग्रेज़ों की बदनामी होगी।[5]

अब सरकार असमंजस में थी– एक नया शहर बनाने के लिए अचानक घोषणा होने से यह स्पष्ट हो चुका था कि रजवाड़ों को राजधानी में एक अलग क्षेत्र दिया जाएगा। यह देखा गया कि सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों को ब्रिटिश भारत में अचल संपत्ति ख़रीदने से रोकने वाली नीति को विशेष परिस्थितियों में अमल में लाया जाना कठिन था। विशेष रूप से राजपूताना और मध्य भारत के प्रमुखों की दिल्ली तक पहुँच थी और वे प्रायः दिल्ली आते-जाते रहते थे।[6]

तो आख़िर किस बात से ब्रिटिश भारत में राजाओं द्वारा भूमि के अधिग्रहण संबंधी नियम में बदलाव हुआ? यह परिवर्तन शायद इसलिए आया था क्योंकि सरकार रजवाड़ों की सक्रिय मदद के बिना न्याय और आज़ादी की माँग करने वाली एकजुट जनता की लगातार ऊँची होती आवाज़ को दबाने में सफल नहीं हो पाती। बंगाल के विभाजन और उसके बाद पनपे जन-आंदोलन की वजह से यह विचार पुख़्ता हुआ। 1857 में हुए प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान काफ़ी उथल-पुथल हुई और इस दौर में कई रजवाड़े अंग्रेज़ों के प्रति वफ़ादार बने रहे। प्रथम विश्वयुद्ध के समय कई रजवाड़ों ने ब्रिटेन को आर्थिक और सैन्य सहायता दी।

अब तक बड़ी सख़्ती से लागू किए गए प्रतिबंधों की पृष्ठभूमि में आधिकारिक तौर पर विरोध न करने की प्रवृत्ति भी प्रबल हो रही थी। भरतपुर राज्य से उस भूमि के बारे में एक अनुरोध मिला, जिस पर दरबार कैंप मौजूद था। इस सिलसिले में प्रतिक्रिया करते हुए यह राय बनी कि दिल्ली में इंपीरियल सिटी के निर्माण की योजना में भारत सरकार निश्चित शर्तों के अनुसार किसी न किसी रूप में देश के विभिन्न दरबारों का सहयोग लेगी।[7] कोई आश्चर्य नहीं कि युद्ध समाप्त होने के कुछ एक साल के अंदर ही भारत सरकार ने 1922 में एक प्रस्ताव पास कर

दिया, जिसके तहत सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों को ब्रिटिश भारत में आवास के लिए भूमि अधिग्रहण की अनुमति मिल गई।

सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों के लिए भू-आवंटन की प्रक्रिया

दिल्ली दरबार के खतम होने और राजधानी को कलकत्ता से दिल्ली लाने के फ़ैसले की वजह से सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों में नई राजधानी में ज़मीन हासिल करने की होड़-सी लग गई। दरबार के तीन दिन बाद वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग ने लिखा– यदि जैसा कि मैंने सुना है कि अधिकतर सत्ताधारी प्रमुख अपने निजी आवासों के निर्माण के लिए ज़मीन चाहते हैं, तो मुझे लगता है कि जितनी ज़मीन हमारे पास है, उससे कहीं ज़्यादा ज़मीन को अधिगृहीत करना पड़ेगा।[6] ऐसा सोचना हास्यास्पद होगा कि केवल ब्रिटिश सरकार चाहती थी कि राजा और प्रमुख नई दिल्ली में ज़मीन हासिल करें। बात दरअसल इसके विपरीत थी। बल्कि रजवाड़े सत्ता के केंद्र के नज़दीक रहना चाहते थे, चाहे वह कलकत्ता हो, शिमला या फिर माउंट आबू। इन सभी राजधानियों में रजवाड़ों के शानदार बंगले और महल मौजूद थे। वे ब्रिटिश शासन के तहत अधीनस्थ होने की अपनी भूमिका को नकार तो नहीं सकते थे लेकिन इस प्रणाली में साझीदार का रुतबा पाना चाहते थे। इन स्थितियों में उन्हें यही फ़ायदेमंद लगा कि वे नई राजधानी में ज़मीन के आवंटन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लें और इस तरह रायसीना हिल के आसपास एक सुरक्षा घेरा बना लें। पंजाब और राजपूताना के राजा भूमि की माँग को लेकर काफ़ी सक्रिय थे। दरबार के सिर्फ़ पाँच दिन बाद सिरोही के महाराजा ने शासक राजाओं के दिल्ली में स्थाई आवास की ज़रूरत को कुछ इस तरह बताया:

> अधिकतर राज-रजवाड़े दिल्ली को फिर से ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की राजधानी बनाने को लेकर काफ़ी ख़ुश हैं। अब वाइसरायल्टी का सिंहासन कलकत्ता से इस प्राचीन नगर में आ जाएगा। भौगोलिक रूप से दिल्ली देश के लगभग बीच में है और यह राजपूताना के नज़दीक भी है, इसलिए दरबारों के आयोजन के अवसर पर एवं ब्रिटिश शाही राजकुमारों के भारत पधारने पर सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों का बार-बार दिल्ली में आना-जाना लगा रहेगा, वाइसराय की ओर से उन्हें यहाँ आने के अनुरोध किए जाएँगे। वे कारोबार तथा दूसरे कामों के लिए भी यहाँ आते रहेंगे। ऐसे में उन्हें अपने और अपने परिचरों के लिए आवास की आवश्यकता होगी। अस्थाई शिविर लगाने से रियासतों के ऊपर अनावश्यक रूप से आर्थिक भार पड़ता है। यदि भारत सरकार मेरी रियासत को एक भूखंड प्रदान कर देती है तो बेहतर होगा कि यह जगह निर्मित होने वाली प्रस्तावित सरकारी इमारतों के निकट हो, जहाँ मैं एक बंगला और ऐसे आउट हाउस बना सकूँ, जो मेरे परिचरों के लिए पर्याप्त हों और इसके लिए मैं अपनी रियासत को एक सनद भी जारी कर सकूँ, तो मुझे उस पर अच्छी और उपयुक्त इमारत बनाने में बड़ी प्रसन्नता होगी।[7]

दिल्ली में ज़मीन के अधिग्रहण के सिलसिले में कोई औपचारिक निर्णय लिए जाने से पूर्व जून 1912 तक सरकार के पास उपयुक्त भूखंड के लिए कई रियासतों की तरफ़ से अनुरोध पत्र आ चुके थे। इनमें सिरोही, ओरछा, भरतपुर, जोधपुर, धौलपुर, देवास जूनियर, जींद, कपूरथला, मलेरकोटला, मिराज सीनियर, बीकानेर, कोल्हापुर, कश्मीर, सिरमौर और

बहावलपुर शामिल थे। इन्होंने 10 से 50 एकड़ तक ज़मीन की माँग की थी। इन रियासतों के अनुरोध पत्र टिप्पणियों से अलंकृत होते थे। दिल्ली में भूमि माँगने के विविध तर्क इनमें नज़र आते थे। एक रियासत तो भूमि का वही टुकड़ा चाहती थी, जिस पर ताजपोशी वाले दरबार के दौरान उसका शिविर लगा था। वह इस भूखंड को दरबार की निशानी के तौर पर चाहता था। तो दूसरी रियासत ने लिखा कि उनका शाही महल प्रस्तावित इंपीरियल सिटी की शानो-शौकत को और चार चाँद लगाएगा। एक और रियासत का कहना था कि इससे यह अहसास और मजबूत होगा कि सरकार भारत के सत्ताधारी राजाओं के विशेषाधिकारों का सम्मान करती है।[10]

आरंभ में यह विचार नहीं था कि इन राजाओं और प्रमुखों को शाही राजधानी के अंदर ज़मीन दी जाए। सोच यह थी कि यह भूखंड नए शहर को शाहजहाँनाबाद के साथ जोड़ने वाली किसी एक सड़क पर आवंटित किए जाएँ। प्रशासन ने इन राजाओं के प्रति कोई ख़ास सम्मान प्रकट नहीं किया, उनके अनुसार, ये लोग बड़ी संख्या में अपने अनुचरों के साथ राजधानी आने वाले थे और यहाँ के बाग़ों के सौंदर्य को नुकसान पहुँचा सकते थे। प्रस्ताव रखा गया कि इन प्रमुखों के लिए एक अलग इलाक़ा तय किया जाना चाहिए। यानी उनके घर दूसरे लोगों के घरों के बीच नहीं होने चाहिए, चाहे ये यूरोपीय हों या भारतीय। ऐसा करके कई असुविधाओं और मुश्किलों से बचा जा सकता था।[11]

इसके अतिरिक्त सफ़ाई, शोर और धूल को रोकने, ट्रैफ़िक के नियम और अनुशासन न मानने वाले अनुचरों को व्यवस्थित करने से जुड़ी चिंताएँ भी थीं।[12] सरकार को लगता था कि इन राजाओं को ज़्यादा समय तक अपने राज्यों को छोड़कर दिल्ली में नहीं रहना चाहिए। उनसे निजी तौर पर यह भी कहा गया कि नया शहर सरकार के मुख्यालय के तौर पर बनाया जाएगा, इसलिए राज-रजवाड़ों को इस जगह का इस्तेमाल न तो हवा-पानी बदलने के लिए और न ही अवकाश बिताने के लिए करना चाहिए।[13]

जून 1912 में एक सामान्य पत्र के माध्यम से राजाओं और प्रमुखों की भूमि संबंधी माँग को आँकने की कोशिश की गई थी, जिसके उत्तर में ज़बरदस्त प्रतिक्रिया मिली। इनकी माँगों को देखते हुए यह ज़रूरी हो गया कि आवंटन के लिए एक योजना बनाई जाए और इसके लिए कुछ नियम एवं शर्तें तय की जाएँ। दिल्ली के मुख्य आयुक्त डब्ल्यू. मैलकॉम हैली ने मई 1913 में कुछ महत्वपूर्ण प्रस्ताव बनाए। इनमें तोपों की सलामी के आधार पर आवंटन और एक गेस्ट हाउस की ज़रूरत जैसी बातें शामिल थीं।

किस राजा को कितनी तोपों की सलामी दी जाती है, इसका निर्धारण ब्रिटिश शाही ताज के साथ रियासतों के संबंधों और उनकी राजनीतिक शक्ति को दिखाती थी। जिन भारतीय रजवाड़ों को सबसे अधिक 21 तोपों की सलामी दी जाती थी, उनमें हैदराबाद, मैसूर, कश्मीर, बड़ौदा और ग्वालियर शामिल थे। इनसे निचले क्रम में राजा को दी जाने वाली सलामी की संख्या 2 के अंक से घटती जाती थी, जैसे कि 19, 17 और सबसे कम संख्या थी 9 तोपों की सलामी। तोपों की सलामी की संख्या प्रतिष्ठा का विषय था और यह कुछ विशेषाधिकारों को सुनिश्चित करता था। वंशानुगत सलामी के अतिरिक्त निजी स्तर पर अधिक तोपों की सलामी देने का एक अतिरिक्त प्रावधान भी था, जो विशिष्टता रखने वाले प्रभावशाली शासकों के लिए आरक्षित था। इसके अतिरिक्त अधिक संख्या में स्थानीय सलामियाँ भी दी जाती थीं, जो शासकों की प्राचीन वंशावली पर निर्भर करती थी।

फिर भी इस व्यवस्था के कारण कुछ शासकों को काफ़ी ईर्ष्या होती थी और आलोचना चलती रहती थी। यूँ तो इन सभी रियासतों को 'रजवाड़ों वाला भारत' नाम देकर ऊपरी तौर पर एक समान माना जाता था, फिर भी इन सबके बीच कभी न मिटाए जा सकने योग्य फ़र्क़ भी थे। लंदन स्थित इंडिया ऑफिस के माध्यम से सभी आधिकारिक मामलों में एक वरीयता क्रम का निर्धारण होता था, लेकिन किसी विशेष रियासत की स्थानीय परंपराओं और प्रतिष्ठा के कारण इस क्रम को अकसर पलट दिया जाता था। किसी भ्रम की स्थिति में स्थानीय क्रम को ही माना जाता था।

सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों को तोपों की सलामी की संख्या के आधार पर ज़मीन आवंटित करने और अन्य प्रमुखों के लिए एक गेस्ट हाउस के निर्माण के संबंध में हैली की सिफ़ारिशों के कारण 4 जुलाई 1913 को एक नए पत्र की ज़रूरत पड़ी। इस बात को लेकर थोड़ा मतभेद था कि सत्ताधारी राजा क्या तोपों की सलामी के सख़्ती से पालन को स्वीकार करेंगे, क्योंकि कुछ मामलों में वरीयता क्रम, तोपों की सलामी की संख्या के मुक़ाबले विपरीत था। ऐसे में यह निर्णय किया गया कि निर्धारित ज़मीन स्थानीय सरकार को दे दी जाए, जो संबंधित क्षेत्र में वरीयता के हिसाब से इस बात का फ़ैसला करेगी। पंजाब और राजपूताना के कुछ राजा तोपों की सलामी वाली योजना को लेकर कुछ ख़ास उत्साहित नहीं लग रहे थे। पंजाब के इन राजाओं ने सरकार को याद दिलाया कि उन्होंने 1857 में दिल्ली पर फिर से नियंत्रण करने में अपनी विशेष सेवाएँ दी थीं। इन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि:

> अन्य राजाओं के मुक़ाबले नई राजधानी में ज़मीन हासिल करने की शर्तों के बारे में उन्हें अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। उनके अनुसार, इस प्रश्न का उत्तर तोपों की सलामी की संख्या के आधार पर नहीं होना चाहिए, जो एक अलग दौर में, अलग सिद्धांतों के आधार पर और अलग सूबों के लिए निर्धारित की गई थीं और जो इन रियासतों के महत्व को लेकर सच्ची कसौटी नहीं है।[14]

राजाओं और प्रमुखों के लिए गेस्ट हाउस

इस बात की भी आशा की जा रही थी कि अगर प्रमुखों के लिए एक गेस्ट हाउस बनाया गया तो अन्य कई प्रमुख अपने आवेदन वापस ले लेंगे। यह गेस्ट हाउस मुख्यतया उन प्रमुखों के लिए बनाया जाना था, जिन्हें सरकार के मेहमानों के तौर पर दिल्ली बुलाया जाने वाला था। साथ ही अगर इन प्रमुखों को गेस्ट हाउस में आवासीय सुविधा न मिल पाती, तो सरकार का यह वादा था कि उन्हें नए शहर के दक्षिण में अस्थाई शिविर लगाने के लिए स्थान दिए जाएँगे। कलकत्ता में हेस्टिंग्स हाउस के उपयोग के कुछ लाभों को देखकर यह स्पष्ट हो गया कि दिल्ली में भी एक गेस्ट हाउस बनाना अच्छा रहेगा। यह प्रस्ताव किया गया कि:

> गेस्ट हाउस में एक आम दरबार हॉल, प्रतीक्षा कक्ष, भोजन कक्ष, बिलियर्ड कक्ष और चार प्रमुखों को एक साथ ठहराने के लिए चार सुइट होंगे। इनमें से हर एक प्रमुख के साथ चार-चार सरदारों के लिए भी व्यवस्था होगी। प्रत्येक प्रमुख के लिए सुइट में एक मुख्य शयनकक्ष, दो ड्रेसिंग कक्ष और शौचालय होंगे। चार सरदारों के लिए चार शयनकक्ष होंगे, जिनके साथ शौचालय भी होंगे। एक भोजन कक्ष और एक सिटिंग रूम भी होगा।

> साथ ही इसके परिसर में हर प्रमुख के 50 अनुयायियों के लिए पर्याप्त स्थान भी होगा।[15]

कई सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों ने इस बात को लेकर चिंता जताई कि वाइसराय के सार्वजनिक आगमनों और बिदाइयों तथा दरबार जैसे ख़ास मौक़ों पर गेस्ट हाउस में जगह की उपलब्धता शायद सुनिश्चित न हो। ऐसे समय पर दिल्ली में बहुत-से राजा-महाराजाओं को आना था। शाही परिवार के लोग परदे में रहने के आदी थे और ऐसी सुविधाओं की कमी को अनदेखा भी नहीं कर सकते थे। कई प्रमुखों ने यहाँ रहने के बदले उनसे वसूली जाने वाली राशि के बारे में भी पूछताछ की। लेकिन इसमें सबसे बड़ी मुश्किल यह थी कि ये लोग एक साथ एक ही इमारत में रहने के लिए राज़ी नहीं थे, इससे उन्हें अपनी निजता खोने का डर था। सरकार की सूचना के एक सप्ताह के अंदर ही बीकानेर के महाराजा गंगा सिंह ने सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों के दिल्ली में गेस्ट हाउस के लिए अपने ही कुछ प्लान बनाए। नॉर्दर्न रिज के नज़दीक मौजूद मैटकाफ़ हाउस या

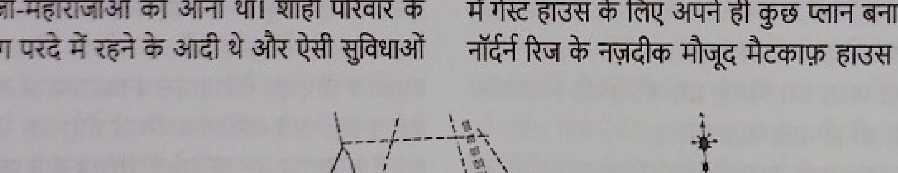

1914 की नई दिल्ली की स्वीकृत रूपरेखा योजना और भू-उपयोग में बाद के वर्षों में काफ़ी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सेंट्रल विस्टा के आख़िरी छोर पर स्थित पार्कों को उस जलाशय के साथ जोड़ दिया गया, जिन्हें यमुना का पानी लाकर बनाया जाना था। राजाओं, दीवानों और कुलीन वर्ग के लोगों के भूखंडों को अस्थाई तौर से पार्क के आसपास आरक्षित रखा गया था। चाहे भारतीय हों या यूरोपीय, क्लर्कों और अधिकारियों के बीच जो अंतर रखा गया, वह उस दौर के प्रशासन के भेदभावपूर्ण तरीक़े की झलक देता है।

पुरानी वाइसरीगल लॉज में से किसी एक को गेस्ट हाउस बनाने का प्रस्ताव भी था। लेकिन यह कभी हक़ीक़त में तबदील नहीं हो सका और सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों के लिए गेस्ट हाउस बनाने की योजना आख़िरकार रद्द कर दी गई।

भूमि-क्षेत्र का प्रश्न

राजधानी बनाने के दौरान आने वाली अनेक समस्याओं में से पहली यह थी कि इमारतों को किस-किस और कितनी जगह पर बनाया जाए। अंग्रेज़ सरकार को गवर्नमेंट हाउस, सरकारी मकानों, सार्वजनिक कार्यालयों और संस्थानों के लिए भूमि को चिह्नित करना था। यह काम हो जाने के बाद बाक़ी ज़मीन को बाज़ारों, आवासीय स्थलों, सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों के महलों और अन्य भूखंडों के लिए बाँटा जाना था। ब्रिटिश वास्तुकार सर एडविन लुटियन्स ने राजधानी के निर्माण की योजना बनाई थी और उन्होंने इस पूरे क्षेत्र को 169 ब्लॉकों में बाँटा था। यह भूखंड अंग्रेज़ी के 'ए' से 'ज़ेड' तक बिंदु के रूप में जाने जाते थे और ये अलग-अलग इलाक़ों को दर्शाते थे। 'सी' बिंदु के उत्तर, उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में मौजूद भूखंड, जो ब्लॉक संख्या 135, 143, 158 और 4 में थे, उन्हें तथा 'जे' बिंदु से 'सी' बिंदु की ओर सड़क के पूर्व में 10 जगहों को राजाओं के महलों के लिए आरक्षित कर दिया गया। प्रिंसेस पार्क या मौजूदा इंडिया गेट क्षेत्र को आज भी सी-हेक्सागन, कहा जाता है, जबकि 'जे'-सर्कस को 'मंडी हाउस सर्कल' नाम मिला है, जो अब काफ़ी लोकप्रिय हो गया है।

मई 1913 तक राजाओं ने जितनी ज़मीन की माँग की थी, वह 500 एकड़ से अधिक थी। वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग ने सुझाव दिया था कि जिन सरदारों को 9 तोपों की सलामी दी जाती है और जो प्रमुख सीधे भारत सरकार के नियंत्रण में नहीं आते, उन्हें आवेदकों की सूची से निकाला जा सकता है। हर रजवाड़े को आवंटित की जाने वाली अधिकतम भूमि 8 एकड़, और न्यूनतम भूमि 4 एकड़ तय कर दी गई। इसी हिसाब से 230 एकड़ भूमि के आवंटन की एक नई सूची तैयार की गई। इंपीरियल दिल्ली कमेटी ने 1916 के शुरू में एक रूपरेखा योजना जमा कराई, जिसमें 251.1 एकड़ भूमि सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों के लिए और 67.4 एकड़ दीवानों और रईसों के लिए थी। इसे अलग-अलग आकारों के 65 हिस्सों में बाँटा गया। भूखंडों का औसत आकार 3.8 एकड़ था, इनमें से सबसे बड़ा 8 एकड़ का था, जिसका अग्रभाग मुख्य सड़क की ओर खुलता था। इस बात का भी प्रावधान था कि भविष्य की माँग को देखते हुए छोटे भूखंडों को आपस में जोड़ा जा सकता है और 'सी' बिंदु के दक्षिण में और विस्तार भी किया जा सकता है।

प्रिंसेस एरिया को कम करना

साल दर साल प्रिंसेस एरिया में ज़मीन की लगातार बढ़ती माँग की वजह से रूपरेखा योजना और आवंटित क्षेत्र में और अनेक बदलावों की आवश्यकता पड़ी। बाद के एक अनुमान के अनुसार, इस क्षेत्र में 384 एकड़ ज़मीन थी, जिसमें 55 भूखंड थे, इनमें से 34 आवंटित हो गए और 21 भूखंड 1934 तक खाली पड़े रहे। हैरानी की बात थी कि इस वर्ष तक 48 एकड़ में फैले केवल 6 भूखंडों पर ही निर्माण किया गया। ये खाली भूखंड योजनाबद्ध तरीक़े से बनाई गई 'बाग़ों की नगरी' के सौंदर्य को नष्ट करने के साथ-साथ स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक थे। यहाँ लगातार चलते निर्माण-कार्य और निर्माण सामग्री इसका प्रमुख कारण थी। तब सरकार ने इस अविकसित भूमि को अपने क़ब्ज़े

में लेने का फ़ैसला किया, जिससे रजवाड़ों के लिए आवंटित इलाक़े का मूल आकार घट गया। दरबारों को एक पत्र भेजा गया, जिसमें प्रिंसेस एरिया की नई सीमाओं के बारे में बताया गया और इस्तेमाल में न आ रहे भूखंडों को सरकार द्वारा अपने अधिकार में ले लेने की सूचना भी दी गई।[16] 1936 में इन रियासतों को सूचित किया गया कि अगर उन्होंने 15 अप्रैल 1938 तक इन भूखंडों पर कोई निर्माण नहीं किया तो सरकार उन्हें अपने अधिकार में ले लेगी। सिर्फ़ अवयस्क द्वारा शासित दरबारों को इसमें छूट दी गई। इस घोषणा के बाद लगभग 10 रियासतों ने तुरंत इस प्रस्ताव का लाभ उठाया, क्योंकि उन्हें इस मौक़े के हाथ से निकल जाने का डर था। लेकिन कई रियासतों ने मुआवज़े के एवज़ में अपने भूखंडों पर से क़ब्ज़ा छोड़ दिया। 1939 तक सैद्धांतिक रूप से सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों को रियायती दरों पर ज़मीन के आवंटन का सिलसिला खतम कर दिया गया।

1930 के दशक की महामंदी और दूसरे विश्वयुद्ध के बीच के दौर के बारे में यह माना गया कि दरबारों को काफ़ी आर्थिक बोझ सहना पड़ा है। ब्रिटिश सरकार के साथ अनिश्चित राजनीतिक संबंधों के कारण नई दिल्ली में ज़मीन ख़रीदने का उत्साह बहुत कम हो गया। साथ ही देश को आज़ाद कराने का आंदोलन भी बढ़ता जा रहा था। संकट के इस दौर में इन रजवाड़ों के अंदर जोखिम उठाने और महल बनाने की प्रवृत्ति कम हो गई।

निर्धारित समय-सीमा में निर्माण आरंभ करने को लेकर रजवाड़ों की उदासीनता तथा सरकार द्वारा बिना बिकी ज़मीनों को दीवानों और कुलीन वर्ग के लोगों को ऊँचे दामों पर बेचने से होने वाले मुनाफ़े ने प्रिंसेस एरिया की क़िस्मत तय कर दी।[17] जहाँ राजाओं ने 1800 रुपए प्रति एकड़ के प्रीमियम चुकाए थे, वहीं सिकंदरा रोड और हार्डिंग एवेन्यू के भूखंडों के लिए समाज के कुलीन वर्ग ने इससे भी दोगुने दाम अदा किए और बोली में ये दाम 4600 रुपए प्रति एकड़ तक पहुँच गए। इस बड़ी धनराशि और निश्चित रूप से मिलने वाले ज़मीन के वार्षिक किराए के कारण सरकार ने यह कार्रवाई की।

राजा-महाराजाओं की तरफ़ से की गई देरी और नई दिल्ली में महल बनाने को लेकर उनकी झिझक से जुड़े कारणों को 1935 के इस आधिकारिक टिप्पणी में बहुत अच्छे ढंग से बयान किया गया है। अंग्रेज़ों की तरफ़ से उठाया गया यह क़दम एक स्वीकारोक्ति है और वास्तविकता को दर्शाती है:

> आज की नई दिल्ली वैसी नहीं है जैसी 1913 में राजधानी के तौर पर नई दिल्ली की कल्पना की गई थी। दिल्ली को सर्वाधिकार संपन्न भारत सरकार के सत्ता के केंद्र के तौर पर बनाने का सपना देखा गया था, जिसमें समय-समय पर बेहद भव्य दरबारों का आयोजन किया जाना था। राजाओं को दरबारियों की भूमिका निभानी थी और हमें अकबर और शाहजहाँ के दौर को पुनर्स्थापित करना था। इसलिए यह सोचा गया कि राजा-महाराजा मुग़ल दौर के रईसों की ही तरह दिल्ली में अपने महल बनाना चाहेंगे। लेकिन अब लगभग पूरी सर्दियों के दौरान दिल्ली में लोकतांत्रिक ब्रिटिश भारतीय सभाएँ आयोजित होती हैं, जो भारतीय रजवाड़ों के विरुद्ध हैं। राजाओं के दिल्ली आने का एक और कारण था, चेंबर ऑफ प्रिंसेस का अधिवेशन, जो अब सक्रिय नहीं रहा। नए संविधान में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि भारतीय रजवाड़ों को

दिल्ली में अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से एक संघीय सभा में अपनी उपस्थिति दर्ज़ करानी चाहिए। ऐसे में दिल्ली आने में राजाओं की रुचि नहीं रही और उनका जोश भी ठंडा पड़ गया। फलस्वरूप दिल्ली में राजाओं के लिए आवास बनाने की योजना पूरी तरह दम तोड़ चुकी है।[18]

मूल्य निर्धारण का प्रश्न

नई राजधानी के लिए ज़मीन को विकसित करने की अपनी कोशिशों को तेज़ करने से पहले सरकार ने ज़मीनों की क़ीमत तय करने का निर्णय किया। सरकार को आशा थी कि नई सड़कों, संचार सुविधाओं, जल-आपूर्ति, जल-निकास तथा अन्य सुविधाओं वाली विकसित भूमि पर निवेश की जाने वाली रक़म का कुछ हिस्सा प्रीमियम और वार्षिक अनुदान से प्राप्त किया जा सकेगा। सरकार ने सरकारी इमारतों के लिए चिह्नित भूमि को छोड़कर बाक़ी सभी जगहों को महँगे दाम और वार्षिक किराए पर लोगों को बेचने का फ़ैसला कर लिया। नए शहर को बनाने से जुड़ी योजना और उसके लिए एक वास्तुकार को चुनने की प्रक्रिया अभी शुरू होनी बाक़ी थी, लेकिन अफ़वाहों का बाज़ार पहले ही गरम था। ऐसे में बहुत सावधानी बरतने की ज़रूरत थी। सरकार ने 1912 में ही सचेत कर दिया था कि सट्टेबाज ढेर सारी ज़मीन को एक साथ न लें, क्योंकि बाद में लीज़ होल्ड की बिक्री से वे काफ़ी मुनाफ़ा कमा सकते हैं।[19] आज एक सदी बीतने के बाद भी सट्टा बाज़ार में ज़मीन के कारोबार के तौर-तरीक़े बदले नहीं हैं!

ज़ाहिर है कि नई राजधानी में आवंटित की जाने वाली ज़मीन से जुड़ी प्रीमियम और ज़मीन का सालाना किराया अदा करने की शर्त राजाओं और प्रमुखों को पसंद नहीं आई। 4 जुलाई 1913 के पत्र के जवाब में ज़मीन के भुगतान को लेकर काफ़ी आक्रोश नज़र आया। इससे राजाओं को यह लगा कि वे इस इंपीरियल राजधानी में केवल मामूली भू-स्वामी बनकर रह जाएँगे। ओरछा के महाराजा ने इस असंतोष को प्रकट करते हुए कहा कि उनका दरबार किंग-एम्परर से दिल्ली में मुफ़्त ज़मीन मिलने की उम्मीद कर रहा था।

मामले की प्रकृति और भव्य समारोह की स्मृति में...यह उपयुक्त होगा कि ऐसे प्रमुखों को ज़मीन मुफ़्त में दे दी जाए, जो इन परिस्थितियों में और इस भव्य समारोह को देखते हुए...यह उपयुक्त होगा और इस पर अधिक ख़र्च भी नहीं आएगा कि ऐसे प्रमुखों को मुफ़्त ज़मीन दे दी जाए, जो दिल्ली में अपने आवास बनाना चाहते हैं। यह उपहार राजधानी की तरह ही स्थायी होगा और यह भी बताएगा कि अंग्रेज़ सरकार सचमुच भारतीय राजाओं के प्रति अच्छी भावना रखती है।

मैं आपको यह भरोसा दिलाना चाहता हूँ कि उपरोक्त अनुरोध इस शुभ और भव्य अवसर के बिलकुल उपयुक्त है। इसका उद्देश्य पैसे बचाना नहीं है और दरबार यह आशा करता है कि हिज़ मैजेस्टी की भारतीय अंग्रेज़ सरकार मेरे अनुरोध पर सकारात्मक ढंग से विचार करेगी।[20]

धार के राजा तथा जींद और नाभा के महाराजाओं ने भी अपने पत्रों में ऐसी ही भावनाएँ व्यक्त कीं। पटियाला के महाराजा ने अनुरोध किया कि सत्ताधारी प्रमुखों को लीज़धारक नहीं माना जाना

चाहिए और उनसे ज़मीन का किराया भी नहीं लिया जाना चाहिए।

इस काम से संबद्ध अधिकारी व्यावहारिक विषयों से परिचित थे। वे उन राजाओं के प्रति सहानुभूति रखते थे, जो लंबे समय से ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति निष्ठावान थे:

> राजाओं और प्रमुखों ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिए जो कुछ किया है और जो कुछ कर रहे हैं, उसे देखते हुए मुझे यह लगता है कि सद्भावना के तौर पर ज़मीन के किराए या भू-राजस्व के रूप में उनसे कुछ भी वसूल न किया जाए। सबसे अच्छी योजना तो यह होगी कि उन्हें यह ज़मीन पूरी तरह निशुल्क दे दी जाए, उन्हें केवल नगरपालिका के आम करों का भुगतान ही करना पड़े। मान लीजिए कि रजवाड़े पूरी 200 एकड़ ज़मीन लेते हैं, तो समिति के प्रस्तावों के आधार पर सिर्फ़ 4 लाख रुपए एकमुश्त या 20 हज़ार रुपए सालाना के राजस्व का ही नुकसान होगा। यह इस फ़ैसले पर निर्भर करता है कि यह रक़म एक ही बार ली जाती है या वार्षिक भू-राजस्व के तौर पर। यह रक़म बहुत ही मामूली है। मुझे पूरा विश्वास है कि इस रियायत का धन की दृष्टि से तो स्वागत होगा ही, यह राजाओं और प्रमुखों के प्रति अंग्रेज़ सरकार के अच्छे व्यवहार का एक प्रमाण भी होगा।
>
> अगर किसी कारण से हिज़ एक्सिलेंसी यह ज़मीन पूरी तरह मुफ़्त देने के लिए तैयार नहीं हैं तो मेरा सुझाव है कि आपको इन प्रमुखों से सालाना भू-किराए या राजस्व के बजाए एकमुश्त रक़म ले लेनी चाहिए। यह भावनात्मक आधार पर उपयुक्त और व्यावहारिक रूप से आसान रहेगा। (यह स्पष्ट है कि ये राजा और प्रमुख साधारण ज़मींदारों की तरह भू-राजस्व देना पसंद नहीं करेंगे)।[21]

इन सब हालातों को नज़र में रखते हुए सितंबर, 1915 में यह सुझाव दिया गया कि सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों को मुफ़्त में ज़मीनें दी जाएँ और इसके लिए उनसे कोई भू-राजस्व और ख़रीद मूल्य न लिया जाए। केवल एकमुश्त राशि ही ली जाए और यह राशि सड़कों, जल-आपूर्ति और रोशनी आदि पर ख़र्च की जाने वाली रक़म का आनुपातिक भाग हो।[22]

1914 में इंपीरियल दिल्ली कमेटी ने अनुमान लगाया था कि भू-अधिग्रहण की लागत 200 रुपए प्रति एकड़ होगी। सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों को 250 एकड़ ज़मीन दी जानी थी (बाद में इसे 384 एकड़ कर दिया गया)। रजवाड़ों को जो ज़मीन मुफ़्त में दी जानी थी, उसके लिए सरकार ने 50 हज़ार की रियायत दी। लेकिन अभी सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों से प्रति एकड़ जो प्रीमियम लिया जाना था, उसकी गणना का काम बाक़ी था। तो इसे कैसे तय किया गया? इसका आकलन इंपीरियल दिल्ली कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर हुआ, जिसमें नई दिल्ली में लीज़ पर दी जाने वाली ज़मीन की शर्तों का ज़िक्र था। इसमें लिखा था:

> भूमि अधिग्रहण की वास्तविक लागत को औसतन 200 रुपए प्रति एकड़ माना जा सकता है। उपकरणों की लागत (इसमें सड़कों, जल-निकासी, नालों की व्यवस्था, जल-आपूर्ति, सिंचाई, सड़कों की रोशनी और क्षेत्र को तैयार करने की पूँजीगत लागत शामिल है) प्रति एकड़ 5000 से 6000 रुपए

के बीच आती है। अगर हर एकड़ के दाम में उपरोक्त सभी कार्यों, विद्युत उत्पादन संस्थान, और मुख्य नाले की लागत भी जोड़ दी जाए एवं अतिरिक्त ख़र्च के अलावा बाक़ी सारी रक़म निकाल दी जाए, तो उपकरणों की लागत लगभग 1800 रुपए होगी। किसी नए क्षेत्र को यदि पहले से मौजूद किसी शहर से जोड़ना है तो इन बुनियादी सुविधाओं की ज़रूरत आमतौर पर पड़ती ही है।[23]

इस तरह भूमि के आवंटन के सिलसिले में रजवाड़ों द्वारा उठाए गए दो बेहद पेचीदा मुद्दों को सुलझा लिया गया। तोपों की सलामी के आधार पर भूमि के आवंटन वाले विकल्प को छोड़ दिया गया, क्योंकि इससे मामला पेचीदा हो रहा था। 1800 रुपए प्रति एकड़ के एकमुश्त प्रीमियम के भुगतान पर राजाओं को आवासीय महलों के लिए ज़मीन उपलब्ध करा दी गई। जब दिसंबर, 1915 में भारत मामलों के ब्रिटिश कैबिनेट मंत्री ने इस प्रस्ताव को अपनी मंज़ूरी दे दी, तो सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों को इस सिलसिले में पत्र भेज दिए गए।[24]

प्रिंसेस क्लब

रियासतों से आने वाले आवेदन पत्रों की सूची तैयार करते समय यह सोचा गया कि राजाओं के विशेष क्लब के लिए भी कोई उपयुक्त जगह ढूँढ़ी जानी चाहिए। 1919 में यह खोज उस जगह पूरी हुई जहाँ आज जयपुर हाउस मौजूद है। उस समय की रूपरेखा योजना में यह जगह प्रिंसेस क्लब के लिए चिह्नित है। राजाओं के लिए क्लब बनाने में अलवर के महाराजा जय सिंह की दिलचस्पी सबसे अधिक थी। लेकिन इस क्लब के लिए राजाओं से

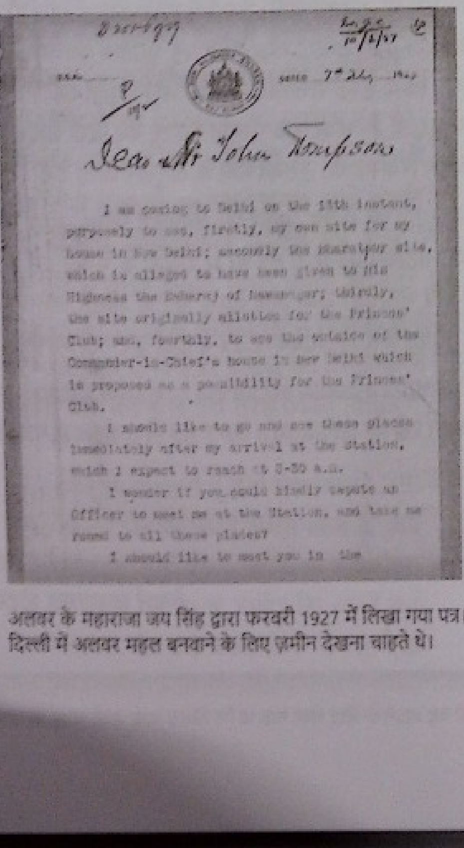

Dear Sir John Thompson

I am coming to Delhi on the 15th instant, purposely to see, firstly, my own site for my house in New Delhi; secondly the Bharatpur site, which is alleged to have been given to His Highness the [illegible] of [illegible]; thirdly, the site originally allotted for the Princes' Club; and, fourthly, to see the [illegible] of the Commander-in-Chief's house in New Delhi which is proposed as a possibility for the Princes' Club.

I should like to go and see these places immediately after my arrival at the Station, which I expect to reach at [illegible] a.m.

I wonder if you could kindly depute an Officer to meet me at the Station, and take me round to all these places?

I should like to meet you in the

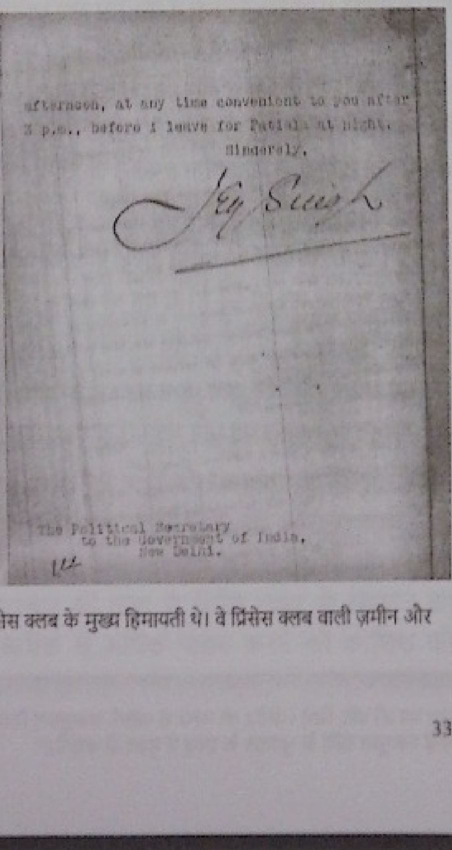

afternoon, at any time convenient to you after 3 p.m., before I leave for Patiala at night.

Sincerely,

Jey Singh

The Political Secretary
to the Government of India,
New Delhi.

अलवर के महाराजा जय सिंह द्वारा फरवरी 1927 में लिखा गया पत्र। वे प्रिंसेस क्लब के मुख्य हिमायती थे। वे प्रिंसेस क्लब वाली ज़मीन और दिल्ली में अलवर महल बनवाने के लिए ज़मीन देखना चाहते थे।

संदर्भ: दिल्ली में बीकानेर हाउस के निर्माण के संबंध में

प्रेषक
रेज़ीडेंट, वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स

प्रति
बीकानेर राज परिषद के राजनीतिक सदस्य

तिथि: जोधपुर, 30 अक्टूबर 1916

महोदय,

1. कृपया अपने पत्र संख्या 904, दिनांक 27 जुलाई 1913 का संदर्भ लें, जिसमें दिल्ली में सत्ताधारी प्रमुखों के आवासों के लिए भूमि के अधिग्रहण की बात थी।

2. मेरे पत्र संख्या 3456, दिनांक 23 जुलाई 1913 के पैरा (2) में यह कहा गया था कि अन्य शर्तों के अतिरिक्त, इन आवासों के लिए ज़मीनों का प्रदान किया जाना आरंभिक प्रीमियम के भुगतान के बाद होगा और भू-राजस्व का आकलन समय-समय पर किया जाएगा। अब मुझे यह निवेदन करना है कि भारत सरकार की सिफ़ारिश पर, हिज़ मैजेस्टी की सरकार ने यह तय किया है कि सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों ने नई दिल्ली में जिन जगहों की माँग की है, वे उन्हें मुफ़्त में दे दी जाएँ और उनसे भूमि किराए या भू-राजस्व के रूप में बार-बार लिए जाने वाले अधिभार भी न वसूले जाएँ। उनसे केवल एकमुश्त राशि ही ली जाए जो कि सड़कों, जल-आपूर्ति और रोशनी आदि पर ख़र्च होगी। अनुमान लगाया गया है कि यह भुगतान लगभग 1800 रुपए प्रति एकड़ के हिसाब से होगा। भारत सरकार ने यह भी निर्णय किया है कि सत्ताधारी राजाओं और प्रमुखों को तोपों की जो सलामी दी जाती है, उनकी संख्या के आधार पर इन आवासीय भूखंडों के आवंटन के प्रस्ताव को रद्द कर दिया जाए। अब यह संभव हो सकेगा कि अधिकतम 8 एकड़ की सीमा में रहते हुए हर रियासत को उसकी माँग के अनुसार जगह दे दी जाए।

3. यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि जहाँ तक संभव होगा इन जगहों को क्षेत्रीय आधार पर समूहबद्ध किया जाएगा और ज़मीन देते समय उन शर्तों का पालन करना होगा, जो मेरे उपरोक्त संदर्भित पत्र में दी गई है। भू-राजस्व के भुगतान से जुड़ी शर्त IV (ii) समाप्त कर दी गई है। मैं यह भी बताना चाहूँगा कि जब सत्ताधारी राजा और प्रमुख ब्रिटिश शासन वाले भारत में अचल संपत्ति लेते हैं, तो ऐसी संपत्ति के संबंध में उन्हें स्थानीय सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र से कोई छूट नहीं मिलती।

4. आप से अपेक्षा रहेगी कि आप भारत सरकार को शीघ्र से शीघ्र यह बताने का प्रयास करें कि क्या दरबार अब भी पहले वाले अपने आवेदन के अनुसार यह भूमि चाहेगा? कृपया इस बात का ध्यान रखें कि अधिकतम 8 एकड़ क्षेत्र ही उपलब्ध हो पाएगा।

5. शीघ्र उत्तर देने का प्रयास करें।

रेज़ीडेंट,
वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स

उस पत्र की प्रति, जिसे रेज़ीडेंट की तरफ से पश्चिमी राजपूताना रियासतों को यह बताने के लिए भेजा गया था कि प्रिंसेस पार्क वाली जगह पर ज़मीन उन्हें एकमुश्त राशि के भुगतान के एवज़ में मुफ़्त दी जाएगी।

शुरू से ही यह अनुमान लगाया जा रहा था कि भारत की मुख्य रियासतों के राज-रजवाड़े उसी तरह इस नए शहर में अपनी ज़िम्मेदारी के तहत महल बनवाने की इच्छा रखेंगे, जैसा कि रूस के सेंट पीटर्सबर्ग में अभिजात बोयर्स समुदाय ने किया था। किंग्स-वे के निचले हिस्से में मौजूद मेमोरियल आर्च तक पहुँचने के मार्ग को इसीलिए प्रिंसेस प्लेस कहा गया है।

रॉबर्ट बायरन

'न्यू दिल्ली', द आर्किटेक्चरल रिव्यू

₹995

नियोगी बुक्स

ISBN 978-93-91125-51-6

9 789391 125516

www.niyogibooksindia.com